अध्यात्म योग का मासिक पत्र

प्रेक्षाध्यान

वर्ष 38
अंक 11
दिसम्बर 2017

www.preksha.com

- प्रेक्षा है चिकित्सा-विधि
- ओम्
- योगसत्य से क्या मिलेगा?

आचार्य तुलसी
अंतर्राष्ट्रीय प्रेक्षाध्यान केन्द्र के लिए

प्रेक्षा कार्ड योजना

प्रेक्षा प्लेटिनम कार्ड (सहयोग राशि रु. 1 लाख) :

कार्ड धारक को प्रदत्त सुविधाएं–

- आचार्य तुलसी अन्तर्राष्ट्रीय प्रेक्षाध्यान केन्द्र में प्रेक्षा फाउण्डेशन द्वारा आयोजित प्रेक्षाध्यान शिविरों में प्रतिवर्ष एक साप्ताहिक शिविर में कार्ड धारक एवं उसके साथ एक अन्य व्यक्ति को 20 वर्ष तक निःशुल्क सहभागिता प्रदान की जाएगी।
- स्वतंत्र वातानुकूलित आवास सुविधा उपलब्ध कराई जायेगी।
- सात्विक एवं शुद्ध शाकाहारी भोजन उपलब्ध कराया जाएगा।
- स्वयं के न आने पर यह सुविधा कार्ड धारक अपने किसी परिजन अथवा मित्रजन को हस्तान्तरित कर सकेगा।
- प्रेक्षा फाउण्डेशन, जैन विश्व भारती द्वारा प्रकाशित मासिक पत्रिका प्रेक्षाध्यान की दस वर्षीय निःशुल्क सदस्यता।

प्रेक्षा गोल्डन कार्ड (सहयोग राशि रु. 50 हजार) :

कार्ड धारक को प्रदत्त सुविधाएं–

- आचार्य तुलसी अन्तर्राष्ट्रीय प्रेक्षाध्यान केन्द्र में फाउण्डेशन द्वारा आयोजित प्रेक्षाध्यान शिविरों में प्रतिवर्ष एक साप्ताहिक शिविर में कार्ड धारक को 20 वर्ष तक निःशुल्क सहभागिता।
- वातानुकूलित आवास सुविधा उपलब्ध कराई जायेगी।
- सात्विक एवं शुद्ध शाकाहारी भोजन उपलब्ध कराया जाएगा।
- स्वयं के न आने पर यह सुविधा कार्ड धारक अपने किसी परिजन अथवा मित्रजन को हस्तान्तरित कर सकेगा।
- प्रेक्षा फाउण्डेशन, जैन विश्व भारती द्वारा प्रकाशित मासिक पत्रिका प्रेक्षाध्यान की दस वर्षीय निःशुल्क सदस्यता।

प्रेक्षा सिल्वर कार्ड (सहयोग राशि रु. 25 हजार) :

कार्ड धारक को प्रदत्त सुविधाएं–

- आचार्य तुलसी अन्तर्राष्ट्रीय प्रेक्षाध्यान केन्द्र में फाउण्डेशन द्वारा आयोजित प्रेक्षाध्यान शिविरों में प्रतिवर्ष एक साप्ताहिक शिविर में कार्ड धारक को 20 वर्ष तक निःशुल्क सहभागिता।
- आवास सुविधा (अटैच्ड) उपलब्ध कराई जायेगी।
- सात्विक एवं शुद्ध शाकाहारी भोजन उपलब्ध कराया जाएगा।
- स्वयं के न आने पर यह सुविधा कार्ड धारक अपने किसी परिजन अथवा मित्रजन को हस्तान्तरित कर सकेगा।
- प्रेक्षा फाउण्डेशन, जैन विश्व भारती द्वारा प्रकाशित मासिक पत्रिका प्रेक्षाध्यान की दस वर्षीय निःशुल्क सदस्यता।

नोट :

- प्रेक्षा फाउण्डेशन द्वारा निर्धारित आचार संहिता धारक/शिविरार्थियों के लिए अनिवार्य रूप से पालनीय होगी।
- पुरुष एवं महिला शिविरार्थियों के लिए पृथक्-पृथक् आवास सुविधा उपलब्ध रहेगी।
- शिविर में सहभागिता हेतु दो माह पूर्व प्रेक्षा फाउण्डेशन को लिखित सूचना प्रेषित करनी होगी।
- शिविरार्थियों की निर्धारित संख्या एवं स्थान की उपलब्धता के अनुसार शिविर हेतु प्राथमिकता के आधार पर सहभागिता की स्वीकृति प्रदान की जाएगी।
- यह कार्ड/सदस्यता अहस्तान्तरणीय होगी।

प्रेक्षाध्यान

अध्यात्म योग का मासिक पत्र

Tulsi Adhyatma Nedam
Jain Vishva Bharati
Publication

Prekshadhyan
A Spiritual Yoga Monthly

वर्ष 38 अंक 12 दिसम्बर 2017

सम्पादक
जैन लूणकरण छाजेड़
+91 9887914000
lkchhajer3@gmail.com
editor@preksha.com

शुल्क :

प्रति अंक	:	30 रु.
पाँच वर्ष	:	2000 रु.
दस वर्ष	:	3000 रु.
एक वर्ष (विदेश)	:	2500 $

कार्यालय :
प्रेक्षा फाउण्डेशन
तुलसी अध्यात्म नीडम्,
जैन विश्व भारती
लाडनूं-341 306
राजस्थान
भारत
दूरभाष :
+91 1581 226119
+91 82333 44482
www.preksha.com

© सर्वाधिकार सुरक्षित

पाठकों के सुझावों का स्वागत है
-सम्पादक
+91 9414139192

: वैधानिक सूचना :
प्रेक्षाध्यान मासिक में प्रकाशित रचनाओं में व्यक्त विचारों से सम्पादक/प्रकाशक की सहमति आवश्यक नहीं है और न उनका कोई वैधानिक उत्तरदायित्व ही है।

भीतर के पृष्ठों पर

प्रेक्षा है चिकित्सा-विधि	आचार्य तुलसी	06
ओम्	आचार्य महाप्रज्ञ	07
योगसत्य से क्या मिलेगा ?	आचार्य महाश्रमण	11
समस्या का समाधान संभव	साध्वी प्रमुखा कनक प्रभा	12
आसनों के प्रकार	मुनि किशनलाल	14
प्रेक्षा-कथा		15
जैन दर्शन और अनेकान्त-1	कुमार अनेकान्त जैन	16
समग्र व्यक्तित्व विकास	मुनि धर्मेश	19
प्रेक्षा-दर्शन		21
प्रेक्षा फाउंडेशन संबद्धता प्राप्त केन्द्र सूची		22
मुद्रा प्रयोग के नियम-उपनियम	डॉ. साध्वी सौम्यगुणा श्री	23
Happiness Through Contemplation	Acharya Mahapragya	25
Shwas Preksha	Mukhya Niyojika Sadhvi Vishrut Vibha	28
संचालित प्रेक्षावाहिनियों के संवाहकों की सूची		30
संभावित प्रेक्षावाहिनी संवाहकों की सूची		31
अध्यात्म का प्रवेश द्वार	साध्वी कनकश्री	32
प्रतिरोधक क्षमता के लिए च्यवनप्राश	मुकेश रामावत	35
सर्दी-जुकाम-खांसी	डॉ. जीवनलाल गांधी	36
रोगमुक्ति दवाओं से नहीं, प्रकृति की शरण में जाने से	पं. श्रीराम शर्मा आचार्य	37
प्रेक्षा गतिविधि		39-41

‘एक कदम प्रेक्षाध्यान की दुनिया में’

अपने भीतर के आनंद की यात्रा अपनी एकाग्रता एवं प्रेक्षा के द्वारा

प्रेक्षाध्यान आवासीय शिविर

- दिनांक 01–08 फरवरी 2018
- दिनांक 01–08 मार्च 2018
- दिनांक 01–08 अप्रैल 2018
- दिनांक 01–08 जुलाई 2018
- दिनांक 01–08 अगस्त 2018
- दिनांक 21–28 सितम्बर 2018
- दिनांक 21–28 अक्टूबर 2018
- दिनांक 21–28 नवम्बर 2018
- दिनांक 21–28 दिसम्बर 2018

प्रेक्षाध्यान प्रशिक्षक प्रशिक्षण शिविर (लेवल 1 एवं लेवल 2)

17 से 25 फरवरी 2018

संपर्क सूत्र : 9820498802, 9993465883

शिविर स्थल : **आचार्य तुलसी अन्तर्राष्ट्रीय प्रेक्षाध्यान केन्द्र, जैन विश्व भारती, लाडनूं, नागौर, राजस्थान**

शिविर में पंजीयन हेतु सम्पर्क सूत्र : 01581–226119, 8233344482, 9772561866

ई–मेल — foundation@preksha.com

अधिक जानकारी के लिए लॉग आन करे : www.preksha.com

निष्काम साधना

विचार-प्रेक्षा

व्यक्ति किसी कार्य को प्रारम्भ तो करता ही नहीं, उसके पहले उसके फल की आकांक्षा करने लगता है। यह इस संसार की बड़ी विचित्र स्थिति है कि व्यक्ति ध्यान, त्याग-तपस्या भी निष्काम नहीं करता। कभी-कभी तो बहुत बड़ी तपस्या को साधारण लौकिक सुख की प्राप्ति के लिए वह दाव पर रख देता है। मेरी तपस्या में यदि सार है तो मुझे अच्छा पुत्र मिलना चाहिए, सुन्दर पत्नी मिलनी चाहिए, धन मिलना चाहिए......। मन में इस प्रकार के संकल्प करना निदान है।

भगवान महावीर ने कहा-जो व्यक्ति अपने भविष्य को निश्चित और कल्याणकारी बनाना चाहता है, उसे भौतिक समृद्धि के लिए साधना/ध्यान/तपस्या का विनिमय नहीं करना चाहिए। साधना वस्तुतः व्यक्ति के आध्यात्मिक लाभ के लिए है। यह दूसरी बात है कि उसके साथ-साथ भौतिक समृद्धि भी व्यक्ति को सहज रूप से प्राप्त होती है। पर आध्यात्मिक लाभ के सामने भौतिक समृद्धि बहुत नगण्य है। जो व्यक्ति साधारण भौतिक सुख-साधनों की प्राप्ति के लिए मोक्ष-सुख की प्रदात्री-आत्मसाधना को दांव पर लगा देता है, वह वैसा ही नासमझ है, जैसे कोई व्यक्ति दो कौड़ी के लिए करोड़ों की सम्पत्ति को दांव पर रख दे। लौकिक दृष्टि से भी सौदे-सट्टे को बहुत अच्छा नहीं समझा जाता, फिर आध्यात्मिक क्षेत्र में तो यह सौदेबाजी सर्वथा हेय है।

संभवतः व्यक्ति निदान करके महान् साधना के बदले में क्षणिक भौतिक सुख-सामग्री प्राप्त कर ले, पर उस शाश्वत सुख से वंचित हो जाएगा, जो उनको महान् साधना के द्वारा प्राप्त होने वाला था। अतः श्रेय यही है कि व्यक्ति निष्काम भाव से साधना करें। निष्काम भाव से साधना करने वाला ही श्रेय (मोक्ष) को प्राप्त होता है।

दो साधक अलग-अलग स्थान पर साधना कर रहे थे। एक ने घोर तपस्या की। मन में सोचा, इसी जन्म में मुक्ति मिलनी चाहिए। एक दिन एक राहगीर उस रास्ते से गुजरा। साधक ने पूछा-'तुम कौन हो?'

'मैं देवदूत हूं। वह बोला।'

'तुम कहां जाओगे?'

'भगवान के पास।'

'अच्छा, कृपा कर एक काम मेरा भी करना। भगवान से पूछना-मेरे कितने जन्म शेष हैं?'

देवदूत वहां से आगे बढ़ा। थोड़ी ही दूर पर दूसरा साधक साधना में लीन था। उसने देवदूत की तरफ ध्यान ही नहीं दिया। देवदूत ने उस साधक से कहा-'मैं भगवान के पास जा रहा हूं। तुम्हें भी कोई बात पूछनी हो तो मैं पूछ कर आ जाऊं।'

साधक मौन रहा। उसने देवदूत की बात का कोई उत्तर नहीं दिया।

देवदूत भगवान के पास जाकर वापस आया। पहला साधक बड़ी आतुरता से देवदूत की प्रतीक्षा कर रहा था। देवदूत को देखते ही उसने पूछा-'मेरा काम किया या नहीं?'

'अभी तुम्हें तीन जन्म और लेने पड़ेंगे।' – देवदूत ने भगवान का समाधान बताया।

यह सुनते ही वह एकदम क्रुद्ध हो गया। उसने माला दूर फेंक दी। कमण्डल को पत्थर पर मारकर फोड़ दिया और भगवान को गालियां निकालने लगा। तपस्या से उसका विश्वास डोल उठा।

देवदूत दूसरे साधक के पास गया और बोला-'तुमने कुछ पूछवाया तो नहीं, पर मैं भगवान से तुम्हारे बारे में जानकारी लेकर आया हूं। भगवान ने कहा है कि जिस बरगद के नीचे बैठकर वह साधना कर रहा है उस वृक्ष के जितने पत्ते हैं, उतने जन्म अभी बाकी है।'

वह साधक, जो अब तक शान्त बैठा था, देवदूत की बात सुनकर नाच उठा। खुशी से झूमते हुए वह बोला-'मेरा कल्याण हो गया। मैंने तो सोचा था कि संसार में जितने वृक्ष है, उनके पत्तों के बराबर मुझे जन्म लेने पड़ेंगे। पर भगवान ने तो एक वृक्ष के पत्तों के बराबर जन्मों में ही मेरी मुक्ति बता दी।'

वह और अधिक तन्मयता के साथ साधना में लीन हो गया।

अब आप देखें कि दोनों साधकों में कितना अन्तर है। पहला फलेच्छु और दूसरा निष्काम। पहला जहां तीन जन्मों की अवधि तक भी धीरज नहीं रख सका और अपनी साधना से भ्रष्ट हो गया, वहीं दूसरा हजारों-हजारों जन्मों की अवधि सुनकर भी साधना पथ पर अविचलित रहा। तथ्य यही है कि निष्काम साधक लम्बी से लम्बी साधना की अवधि भी धीरज के साथ पूरी कर लेता है। इसके विपरीत फलेच्छु साधक बहुत जल्दी अधीर हो साधना से विमुख हो जाता है।

जैन तीर्थंकरों ने निष्काम साधना पर सबसे अधिक बल दिया है। भगवद् गीता में भी यह तत्व उपदिष्ट है–

'कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन'

समाधि उत्तरोत्तर विकसित होने वाली एक उच्च स्तरीय सुदृढ़ मनोभूमि है, जिसमें अनगढ़, अनाड़ी तथा अनियंत्रित मन को शनैःशनैः साधा एवं दीक्षित किया जाता है। ललक, लिप्साओं, वासना, तृष्णाओं से पीछा छुड़ाया जाता है। अन्तर्निहित दोष-दुर्गुणों, कषाय-कल्मषों को चुनकर उखाड़ फेंकना होता है। कर्मेंद्रियों तथा ज्ञानेंद्रियों को इसलिए नियंत्रित किया और निर्मल बनाया जाता है, ताकि वे अनभ्यस्त स्थिति में शक्तिसम्पन्नता की बाढ़ में बहने न पाएं। ध्यान-धारणा जैसी योगपरक विधा अपनाने से साधक की अंतःसामर्थ्य बढ़ जाती है। दुर्भाग्य से यदि कोई दोष-दुर्गुण अनियंत्रित रह गए, तो प्रगति की दिशा अवरुद्ध हो जाती है और वही जीवन पर हावी होते जाते है।

दोष-दुर्गुणों को क्रमशः समाप्त करने तथा जाग्रत शक्तियों को धारण कर चिरस्थायी बनाए रखने के लिए योगसाधक को विभिन्न प्रक्रियाओं से होकर गुजरना पड़ता है। सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य जैसे यम-नियमों की तुलना समाधि क्षेत्र में गहरे नींव के पत्थरों से की गई है। प्रत्याहार, धारणा का अनुशासन इसलिए बनाया गया है कि क्रमशः विकास करने से अतींद्रिय क्षमताओं का जागरण होने लगता है। जाग्रत शक्तियों का कहीं दुरुपयोग न होने पाए इसके लिए प्रज्ञास्तर की विवेक बुद्धि का आश्रय लिया और संयम साधा जाता है। ध्यान-धारणा की इसमें विशिष्ट भूमिका होती है।

यह साधना साधु-संतों व गृहस्थों सभी के लिए अत्यन्त उपयोगी एवं आवश्यक है। इस साधना के बिना व्यक्ति कभी भी मुक्ति के नजदीक नहीं पहुंच सकता। अभ्यास के द्वारा कठिन से कठिन कार्य भी सरल हो जाता है। एक साथ चाहे सर्वथा कामना न छूटे पर यदि इस दिशा में प्रयत्न चालू रहे तो आगे चलकर सर्वथा निष्काम होना सहज है। निष्काम साधना के विकास के लिए साधक नियमित 'ध्यान' का प्रयोग करता रहे। ❐

जैन लूणकरण छाजेड़

प्रेक्षा है चिकित्सा-विधि

आचार्य तुलसी

चिकित्सा एक बहुत बड़ा विज्ञान है। इस विज्ञान का लाभ करोड़ों-अरबों लोग उठा रहे हैं। स्वास्थ्य-लाभ के लिए इस विज्ञान का विशिष्ट महत्त्व है, पर आश्चर्य तो इस बात का है कि चिकित्सा की नई विधियों, नए प्रयोगों और नई औषधियों का आविष्कार होने पर भी विश्व-मानव का स्वास्थ्य गिरता जा रहा है क्यों?या तो निदान सही नहीं हो रहा है या फिर उपचार में ही कहीं गड़बड़ हो रही है। कुछ लोगों का अभिमत है कि शरीर में छोटे-बड़े इतने रोग हैं कि चिकित्सक उनके उपचार में उलझ जाता है और मूल रोग पकड़ में नहीं आता। जब तक मूल बीमारी का निदान नहीं होता, वह दूसरी बीमारियों को उभारती रहती है।

इस युग के व्यक्ति मानते हैं कि सबसे बड़ा रोग है-तनाव। मस्तिष्क में तनाव, मन में तनाव, मांसपेशियों में तनाव, स्नायुओं में तनाव। उस तनाव-ही-तनाव में व्यक्ति उलझा रहता है और टेबलेट्स खाता रहता है। इससे तनाव तो कम होता नहीं, नई बीमारियां और सताने लगती हैं।

अध्यात्म की भूमिका पर खड़े होकर चिंतन किया जाए तो प्रतीत होता है कि तनाव भी मूल बीमारी नहीं है, वह किसी दूसरी बड़ी बीमारी की संतति है। बीमारी का मूल है-कषाय। उत्तेजना, अहं, वंचना, तृष्णा आदि ऐसे मनोभाव हैं जो मन की भीतरी परतों के नीचे रहकर भी अपना काम करते रहते हैं। इनका सबसे बड़ा काम है सत्य को नकारना। एक सत्य को झुठलाने के लिए जैसी वृत्तियों का निर्माण होता है, उनसे एक तनाव ही क्या, न जाने कितनी बीमारियां हो जाती हैं।

सत्य का प्रशंसक और समर्थक कोई भी हो सकता है, पर उसे स्वीकार करना कठिन है। जानबूझकर सत्य को नकारने वाला व्यक्ति कुंठा और संत्रास ही प्राप्त कर सकता है। इस तथ्य की जानकारी होने पर भी व्यक्ति विचलित हो जाता है। विचलित और विभक्त मन वाला व्यक्ति न संयत रहता है, न स्थिर रहता है और न सत्य को समझता है। सत्य को नहीं समझने वाला या समझकर भी झुठला देने वाला भय और हिंसा के मनोभावों से आक्रांत होता रहता है। ऐसी स्थिति में वह स्वस्थ शरीर, स्वस्थ मन और स्वस्थ चिंतन की कल्पना कैसे कर सकता है?

व्यक्ति और समाज

सामाजिक संदर्भ में व्यक्ति एक इकाई है। यह सच है, पर इसे विस्मृत कर समाज या समूह को ही सब-कुछ मान लेना सचाई नहीं है। समाज व्यक्ति को एक पुर्जे से अधिक मूल्य नहीं दे सकता, पर इसका अर्थ यह नहीं है कि समाज के लिए जो कुछ भी किया जाए, वह वैध है। वस्तुतः न तो अकेला व्यक्ति सचाई है और न अकेला समूह सचाई है। दोनों की सापेक्षता ही सत्य है।

व्यक्ति और समाज बड़ी बात है। आज तो मनुष्य अपने खान-पान में भी सचाई को झुठला रहा है। दो पदार्थ, हमारे सामने हैं-चोकर और मैदा। चोकर सचाई है, क्योंकि यह स्वास्थ्यप्रद है, किन्तु इसे फेंककर मैदा खाया जाता है। फलों के छिलकों में जितने विटामिन होते हैं, उसके भीतर नहीं होते। फिर भी छिलके उतार दिए जाते हैं। एक नहीं अनेक खाद्य पदार्थ ऐसे हैं, जिनकी सचाई को नकारकर व्यक्ति स्वयं ही बीमारियों को निमंत्रण देता है।

मनुष्य का शरीर अपने आप में सुव्यवस्थित है। उसमें गुर्दे, हृदय, आमाशय आदि ऐसे अवयव हैं जो स्वचालित यंत्रों की भांति रक्त-शोधन, अन्नपाचन आदि का काम करते रहते हैं, किन्तु मनुष्य इस सचाई को झुठला देता है। वह नमक अधिक खाकर हृदय के काम से अवरोध पैदा करता है। चीनी अधिक खाकर गुर्दों की क्रिया में बाधा पहुंचाता है और मसाले आदि तामसिक पदार्थ खाकर आंतों और आमाशय को विकृत कर लेता है।

एक समझदार प्राणी जान-बूझकर अपना अहित क्यों करता है?इसीलिए कि उसका चित्त उसके वश में नहीं है। चित्त को वश में करने का उपाय किसी भी चिकित्सक के पास नहीं है। यह व्यवस्था है धर्म के पास। धार्मिक व्यक्तियों का यह कर्तव्य है कि वे चित्त को एकाग्र और संयत करने की सही प्रक्रिया प्राप्त करें। ऐसी प्रक्रिया में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका है प्रेक्षाध्यान की। प्रेक्षा आत्म-चिकित्सा का पथ है। वह व्यक्ति की सही चिकित्सा कर सकता है, पर तभी, जबकि वह विभाव को छोड़कर स्वभाव में रमण करता है। विभाव बीमारी का निमित्त है और स्वभाव स्वास्थ्य का लक्षण है। निमित्तों और लक्षणों के आधार पर रोग का सही निदान और सही उपचार हो जाए तो अस्वास्थ्य की समस्या जड़ मूल से निरस्त हो सकती है।

❐

ओम्

आचार्य महाप्रज्ञ

ओंकारं बिंदुसंयुक्तं, नित्यं ध्यायन्ति योगिनः।
कामदं मोक्षदं चैव, ओंकाराय नमो नमः।।

हम सब दो प्रकार के जगत् में जीते हैं। एक हमारा आध्यात्मिक जगत् है, आंतरिक जगत् है और दूसरा बाह्य जगत्। अन्तर्जगत् में हम अकेले होते हैं और बाह्य जगत् में हमारा समाज होता है। हमारा ज्ञान का जीवन अन्तर् जगत् है।वह सदा भीतर रहता है, कभी बाहर नहीं आता। यदि मनुष्य कोरा ज्ञानी ही होता तो वह नितांत अकेला होता। वह सामाजिक कभी नहीं बनता। हमारा सामाजिक जीवन बनता है भाषा के द्वारा, शब्द के द्वारा। ज्ञान और भाषा का जब से योग हुआ है तब से मनुष्य बाह्य जगत् में आया और उसने अपना विस्तार किया। शब्द ने मनुष्य को विस्तार दिया, बाह्य जगत् का निर्माण किया और एक द्वैत पैदा किया। मनुष्य दो जगत् में जीने वाला प्राणी बन गया।

ज्ञान अपने-आप में स्वाप्य होता है। उसके द्वारा किसी को भी अभिव्यक्ति नहीं दी जा सकती। केवल जाना जा सकता है, पर अपना जाना हुआ दूसरे तक नहीं पहुंचाया जा सकता। ज्ञान जब दूसरे तक नहीं पहुंचता तब समाज नहीं बनता। समाज का मूल आधार है अभिव्यक्ति, ज्ञान का विनिमय, प्रत्येक के ज्ञान का प्रत्येक तक पहुंचना।

अभिव्यक्ति के दो साधन है। शास्त्रीय शब्दावली में उन्हें अक्षरश्रुत और अनक्षरश्रुत कहा जाता है। हम अपने ज्ञान को दूसरों तक पहुंचाते हैं या तो अक्षर के द्वारा या अनक्षर के द्वारा-संकेत के द्वारा। अंगुली का एक इंगित किया जाता है और दूसरा व्यक्ति मन के भाव को जान लेता है। तर्जनी हिलती है और सामने वाला व्यक्ति अपने प्रति किए जाने वाले व्यंग्य का अनुभव कर लेता है। हमारे शरीर और अवयवों के इंगित अपना अर्थ समझा देते हैं। फिर भी यह अनक्षर श्रुत इतना कम अर्थ समझा पाता है कि उससे हमारा पूरा व्यवहार नहीं चलता, बहुत थोड़ा व्यवहार चलता है। यदि यह अनक्षर श्रुत ही होता, यदि संकेतों के माध्यम से ही मनुष्य अपने मन की भावनाओं को व्यक्त कर पाता तो वह आज के विकास बिन्दु तक कभी नहीं पहुंच पाता। विकास का बड़ा स्रोत है-अक्षरश्रुत। आज जितना विकास हुआ है, उसका माध्यम है अक्षर, शब्द या भाषा। भाषा के द्वारा अपने मन की बात को व्यक्त करने में सहज सुविधा होती है और मनुष्य अपनी सारी भावना को दूसरों तक पहुंचा देता है, दूसरों को समझा देता है। ज्ञान और विज्ञान का समूचा विकास, संस्कृति का समूचा विकास, मानव जाति का समूचा विकास भाषा के माध्यम से हुआ है।

इसकी दार्शनिक प्रक्रिया को भी समझ लें। हमारे भीतर चेतना है। वह अपने-आप में सक्रिय रहती है। बाह्य वस्तु के लिए निष्क्रिय भी रहती है। चेतना की सत्ता एक लब्धि है, एक उपलब्धि है। यही चेतना जब बाह्य जगत् को जानने के लिए सक्रिय होती है तब उपयोग बन जाती है। ज्ञान की दो अवस्थाएं हैं। एक अवस्था है उसका अनावृत होना और दूसरी अवस्था है ज्ञेय को जानने में सक्रिय होना। ये दोनों अवस्थाएं अन्तर्जगत् की अवस्थाएं हैं। ये बाह्य जगत् में कभी प्रकट नहीं होतीं। ये अमूर्त हैं। इनका स्वरूप हमारे सामने नहीं आता। कोई भी व्यक्ति किसी दूसरे व्यक्ति के ज्ञान को कभी समझ नहीं पाता, कभी पकड़ नहीं पाता। अन्तर् जगत् और बाह्य जगत् के मध्य में तीन सेतु है-शरीर, वाणी और मन। ये अन्तर् जगत् के प्रकार को बाह्य जगत् तक पहुंचाते है। अमूर्त जब मूर्त के साथ जुड़ता है, तब वह श्रुत बनता है। शास्त्र, आगम या वाङ्मय बनता है। मन, मन से आगे वाक् और वाक् से आगे काय-इन तीनों के कर्म जुड़े हुए हैं। मन में कोई विचार पैदा हुआ और वह वाक् में उतरा, वाङ्मय बना, वाणी में आया। उसे वाणी में आने के लिए काया के तंत्र ने उसका पूरा सहयोग किया। उच्चारण के स्थान, जिनसे शब्द उच्चारित होते है, सक्रिय बने और मन का भाव प्रकट हो गया। जो अगम्य था वह गम्य बन

गया, जो अन्तर्जगत में था वह बाह्यजगत् में आ गया।

मैंने मन में सोचा-मुझे वहां जाना है। किन्तु जब मैंने भाषा के द्वारा प्रकट कर दिया कि मुझे वहां जाना है, तब वह अन्तर्जगत की घटना नहीं रही, वह बाह्य जगत् की घटना हो गई। मन की अनन्य बात दूसरों के लिए गम्य बन गई।

शब्द की शक्ति के द्वारा हमारा ज्ञान बाह्य जगत् में अवतरित होता है। यदि शब्द का वाहन न मिले तो ज्ञान भी कभी भी बाह्य जगत् में अपने अस्तित्व को प्रकट नहीं कर पाता। यह है ज्ञान और शब्द का संबंध।

शब्द पर शब्दशास्त्रियों ने काफी विमर्श किया है। दूसरी ओर मंत्रशास्त्रियों ने भी काफी विमर्श किया है। शब्द पर दो शास्त्र प्रकाश डालते हैं-शब्दशास्त्र और मंत्रशास्त्र। ज्ञान भीतर होता है। वह शब्द के माध्यम से पहुंचता है। दूसरा व्यक्ति मुझे कुछ बताता है, जिसे मैं नहीं जानता। वह बात मुझे शब्द के माध्यम से उपलब्ध हुई। शब्द के भीतर की यात्रा शुरू की और वह मेरे ज्ञान के साथ जुड़ गया। ज्ञान का स्पर्श कर अपने अर्थ को वहां तक पहुंचा दिया। यह प्रक्रिया है ज्ञान की बाहर से भीतर तक पहुंचने की। मेरे भीतर का ज्ञान भी इस प्रक्रिया से दूसरे तक पहुंचता है। मेरा ज्ञान मेरे भीतर रहता है और दूसरे का ज्ञान दूसरे के भीतर रहता है, किन्तु शब्द के माध्यम से हम ज्ञान का विनिमय कर देते हैं, एक-दूसरे के ज्ञान को अपना बना लेते हैं। इसका दूसरा पक्ष साधना का है, मंत्रशास्त्र का है। मंत्रशास्त्र के अनुसार शब्द की पहली अवस्था है-संजल्प, जो तेज स्वर में बोला जाता है। यह भाष्यावस्था-बोली जाने वाली अवस्था है। दूसरी अवस्था-अन्तर्जल्प, जब शब्द बाहर सुनाई नहीं देता अथवा उच्चरित नहीं होता तब अन्तर्जल्प होता है। तीसरी अवस्था ज्ञानात्मक है। वहां अन्तर्जल्प भी समाप्त हो जाता है, भाषा ज्ञान के रूप में शेष रह जाती है। मंत्रशास्त्र में वाक् को वैखरी, वाक्-प्रयोग (वचनयोग) को मध्यमा और ज्ञानावरण के विलय या ज्ञान के उपयोग को पश्यंती कहा जाता है। वह ज्ञान जब लब्धि में चला जाता है, ज्ञान की सहज क्षमता में बदल जाता है तब वह परावाक् बन जाता है। ज्ञान की यह सारी यात्रा अक्षर के द्वारा होती है। अक्षर का कभी क्षरण नहीं होता। प्रत्येक मनोविज्ञानी व्यक्ति में अक्षर का बोध होता है। सोते-जागते वह ज्ञान अव्यक्त या व्यक्त रूप से उपस्थित रहता है।

अक्षर तीन प्रकार के होते हैं-

1. संज्ञा अक्षर - अक्षर की आकृति।
2. व्यंजन अक्षर - अक्षर का उच्चारण।
3. लब्धि अक्षर - अक्षर का ज्ञान।

- **अभिव्यक्ति के दो साधन-अक्षरश्रुत और अनक्षरश्रुत।**
- **शब्द ज्ञान का वाहक।**
- **शब्द का प्रकाश डालने वाले दो शास्त्र-शब्दशास्त्र और मंत्रशास्त्र।**
- **मंत्रशास्त्र के अनुसार शब्द की तीन अवस्थाएं- संजल्प, अन्तर्जल्प और ज्ञानात्मक।**
- **अक्षर के तीन प्रकार।**
- **सोऽहं का महत्त्व।**
- **ओम् की निष्पन्नता के विविध दृष्टिकोण।**
- **ओम् एकाक्षरी मंत्र। इसके जाप से होने वाला लाभ।**
- **मंत्र-जाप में उच्चारण का महत्त्व।**
- **ओंकार के साथ रंगों का योग।**

ज्ञानात्मक क्षमता वाला अक्षर लब्धि अक्षर होता है। व्यंजन अक्षर वाक् के रूप में प्रकट होता है। अपने वाच्य अर्थ को बाह्य जगत् में प्रकट करता है। संज्ञा अक्षर एक निश्चित आकार का होता है, जो लिपि में प्रयुक्त होता है। लिपि का भी बड़ा महत्त्व है। हम जितनी भी रेखाएं खींचते हैं उन रेखाओं का बड़ा महत्त्व होता है। छोटी-सी रेखा खींचते हैं और उसमें एक विशेष प्रकार की क्षमता आ जाती है। आकार और मुद्रा का भी मूल्य कम नहीं है। आदमी सिंहासन की मुद्रा में बैठता है। एक आकार बनता है और ठीक पिरामिड का आकार बन जाता है। पिरामिड के आकार में कॉस्मिक रे को पकड़ने की क्षमता आ जाती है। हम उस दुनिया में जीते हैं जहां समूचे सौरमंडल के विकिरण हम तक पहुंचते हैं। विभिन्न मुद्राओं और विभिन्न आकृतियों में विभिन्न सौर विकिरणों को ग्रहण करने की क्षमता होती है। जब हम सिद्धासन की मुद्रा में होते हैं तो एक विशिष्ट प्रकार के विकिरणों को ग्रहण करते हैं। जब हम 'अ' का लिपि-विन्यास करते हैं, 'अ' को लिखते हैं तब 'अ' अक्षर लिखते ही उसके माध्यम से विशिष्ट प्रकार के विकिरणों को ग्रहण करने लग जाते हैं। जब 'उ' का लिपि-विन्यास करते हैं तब दूसरे प्रकार के विकिरणों को ग्रहण करने लग जाते हैं। इस परिस्थिति के संदर्भ में, वाक् और अर्थ के संदर्भ में, ज्ञान और शब्द के संदर्भ में जब हम 'ओम्' पर विचार करते हैं तो लगता है कि यह शब्द अपने आप में बहुत मूल्यवान् है। शब्द की मूल्यवत्ता पर हमने दो दृष्टियों से विचार किया है। एक है-शब्द की प्राणशक्ति की समयोजना, प्राणशक्ति के साथ होने वाला शब्द का संबंध और दूसरी है-भावनात्मक विशेषता, उसके पीछे हमारी क्या भावना जुड़ी होती है। पहला प्रश्न है प्राणवत्ता का। हम जो कुछ कर रहे हैं, वह सारा का सारा कार्य प्राणशक्ति के द्वारा कर रहे हैं। तैजस शरीर के माध्यम से प्राण की धारा निःसृत होती है। वह हमारे समूचे जीवन-तंत्र को संचालित करती है। प्राण की धारा या विद्युत् की धारा जितनी बलवती होती है उतनी ही हमारी क्षमताएं बढ़ जाती हैं। हम निरन्तर श्वास लेते हैं। श्वास प्राण का ईंधन है। उसके द्वारा प्रज्वलित होता है। हम निरन्तर श्वास लेते हैं, इसीलिए हमारा तंत्र निरन्तर गतिशील रहता है। योगशास्त्रीय गणना के अनुसार एक व्यक्ति एक दिन में इक्कीस हजार छह सौ श्वास-प्रश्वास लेता है। जब वह श्वास लेता है तब एक प्रकार की ध्वनि होती है। श्वास छोड़ता है तब भी ध्वनि होती है। श्वास छोड़ते समय 'ह' की और लेते समय 'स' की ध्वनि होती है। इन सहज दोनों ध्वनियों के आधार पर 'सोऽहं'

का विकास होती है। इसे 'अजपाजप' कहा जाता है। इसलिए इसका नाम 'अजपा' है। इन दोनों का साम्य होने पर परमात्मभाव का विकास होता है। तंत्रशास्त्र के अनुसार पूर्ण वर्णमाला ओंकार से उत्पन्न होती है। इसीलिए उसे 'मातृकाम्' कहा जाता है।

'सोऽहं' का महत्त्व अपनी ध्वनिगत विशेषता के कारण है। प्राणशक्ति के साथ उसका स्वाभाविक संबंध है, इसलिए उसका महत्त्व है। उसके साथ भावना का संबंध भी जुड़ा हुआ है। 'सोऽहं' का अर्थ होता है-मैं वह हूं जो परमात्मा है वह मैं हूं। इस भावनात्मक संबंध के कारण 'सोऽहं' एक बहुत शक्तिशाली मंत्र बन गया। ध्वनिगत विशेषता और भावनात्मक संवेदना के कारण इसका स्थान महामंत्रों की कोटि में प्रस्थापित है।

'सोऽहं' में थोड़ा-सा परिवर्तन हुआ। 'सकार' को हटाया, 'हकार' को हटाया और 'ओम्' बन गया। 'सोऽहं' का परिवर्तित रूप है 'ओम्', जो भाषाशास्त्रीय दृष्टि और ध्वनि विश्लेषण के अनुसार 'सोऽहं' के बहुत निकट है। 'स' और 'ह' चले जाते हैं और शेष 'ओम्' रह जाता है। 'ओम्' हमारी प्राणगत ध्वनि है। प्राण के साथ सहज उच्चरित होने वाली ध्वनि है। इसलिए इसका बहुत मूल्य है। 'ओम्' का पर्याय शब्द है 'प्रणव'। महर्षि पतंजलि ने इसे पुरुष का वाचक बतलाया है। 'प्रणव' प्राण को देने वाला होता है। वह हमारी प्राणशक्ति को जागृत करता है। 'ओंकार' हमारी प्राणशक्ति को प्रज्वलित करने वाला है, इसलिए उसका बहुत मूल्य है। वैज्ञानिक युग में जितना ऊर्जा का मूल्य है उतना ही हमारी आंतरिक शक्ति के विकास में, जीवन तंत्र के परिचालन में इसका मूल्य है। इस प्राकृतिक मूल्य के साथ साधना की परम्पराओं ने भावनात्मक मूल्य का भी योग किया है। वैदिक परम्परा में 'अ,उ,म्'-इन तीनों अक्षरों के योग से ओम् शब्द निष्पन्न होता है। 'अ' ब्रह्मा, 'उ' विष्णु और 'म' महेश-ये तीनों शक्तियां इसके साथ जुड़ी हुई हैं। वैदिक परम्परा का अनुयायी 'ओंकार' का जप करते समय अपनी प्राकृतिक प्राणशक्ति का उपयोग करता है और साथ-साथ अपने में ब्रह्मा, विष्णु और महेश की शक्ति का अनुभव करता है। एक ओर उसकी प्राणशक्ति जागृत होती है तो दूसरी ओर उसकी आंतरिक शक्तियां भी संवेदनशीलता के कारण प्रकट होती हैं।

जैन परम्परा में 'ओम्' पंच परमेष्ठी के पांच वर्णों से निष्पन्न होता है। अर्हत्, अशरीर, आचार्य, उपाध्याय और मुनि-इन पांच परमेष्ठियों के आदि अक्षरों का योग करने पर 'ओम्' बनता है-अ+अ+आ+उ+म्-ओम्। पूरा नमस्कार महामंत्र ओंकार में गर्भित है। एक जैन व्यक्ति 'ओंकार' का जप करते समय प्राणशक्ति से लाभान्वित होता ही है, और साथ-साथ पंच परमेष्ठी से अपनी तन्मयता का अनुभव करता है और शरीर के कण-कण में परमेष्ठी पंचक की अवस्थाओं का अनुभव करता है। यह तादात्म्य होता है तब आंतरिक शक्तियां उसी रूप में विकसित होने लगती हैं। जहां तक प्राणशक्ति का संबंध है, दोनों परम्पराओं में कोई अन्तर नहीं आता, क्योंकि यह शरीर के साथ जुड़ी हुई घटना है। जहां भावनात्मक शक्ति का प्रश्न है वहां अपनी-अपनी भावना के अनुसार परिवर्तन घटित होने लगता है।

जैन आचार्यों ने 'ओम्' की निष्पत्ति का एक दूसरा रूप भी प्रस्तुत किया है। अ-ज्ञान, उ-दर्शन और म्-चारित्र का प्रतीक है। इन तीन वर्णों से निष्पन्न (अ+उ+म्) ओंकार त्रिरत्न का प्रतीक है। ओंकार की उपासना करने वाला मोक्षमार्ग की उपासना करता है, ज्ञान, दर्शन और चारित्र-तीनों की उपासना करता है। यह भावनात्मक संबंध है। इस प्रकार 'ओम्' समूची वर्णमाला और मात्रिक अक्षरों में एक मूर्धन्य अक्षर बन गया।

शब्द उच्चारण का एक बहुत बड़ा विज्ञान है। मंत्रशास्त्र ने उस पर बहुत प्रकाश डाला है। ओंकार के उच्चारण से जमे हुए मल धुल जाते हैं। साधना का प्रयोजन होता है मन को निर्मल करना, मन पर प्रतिदिन जमने वाले मैलों को दूर करना। जब मैल दूर होते हैं तब आन्तरिक व्यक्तित्व बदलता है, नाड़ी-संस्थान निर्मल होता है। यह चेतना की सक्रियता क्या चमड़ी में है?नहीं। हड्डियों में है?नहीं। मांस में है?नहीं। वह नाड़ी-संस्थान में है। जिसका नाड़ी-संस्थान जितना निर्मल होता है वह उतना ही ज्ञानवान् और क्रिया में सक्षम होता है। नाड़ी-संस्थान में प्राणधारा के तीन मुख्य स्रोत हैं। योग की भाषा में इन्हें इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना कहा जाता है। हमारी चेतना के ऊर्ध्वगमन में, अन्तश्चेतना के विकास में सुषुम्ना का बड़ा योग है। हमारी ज्ञान की शक्ति और कर्म की शक्ति सुषुम्ना से विकीर्ण होकर बाहर फैलती है। जब

प्राण का प्रवाह इड़ा और पिंगला के मार्गों से हटकर सुषुम्ना में प्रवेश करता है तब हमारी अतीन्द्रिय शक्तियां जागृत होती है, चेतना का ऊर्ध्वगमन होता है, वासनाएं कम होती है, कामनाएं कम होती है, रासायनिक परिवर्तन घटित हो जाता है, ग्रन्थियों के स्राव बदल जाते हैं, व्यक्तित्व का रूपान्तरण हो जाता है। जिस व्यक्ति से हम अच्छे आचरण की आशा नहीं कर सकते, वह व्यक्ति सुषुम्ना या मध्यमार्ग में प्राणधारा प्रवाहित होने पर अपने-आप अच्छा आचरण करने लग जाता है। किसी उपदेश की जरूरत नहीं, किसी को समझाने की जरूरत नहीं। सुषुम्ना के जागरण द्वारा आचरण की शुद्धि अपने-आप हो जाती है और उसके जागरण में ओंकार के जप का बहुत बड़ा योग हो सकता है। ओंकार का जप तीनों स्थितियों में चलता है-वाक् के रूप में, वाक् से अन्तर्जल्प के रूप में और सुषुम्ना में प्रवेश कर ज्ञान के रूप में। जब हमारी चेतना प्राणधारा के साथ प्रवाहित होने लग जाती है उस स्थिति में व्यक्तित्व में सहज ही परिवर्तन घटित होता है, जिसकी हम पहले कल्पना भी नहीं कर सकते।

शब्द की शक्ति कम नहीं होती। उसकी ध्वनि-तरंगें बंद पड़े दरवाजों को खोल देती हैं, अज्ञात ज्ञात हो जाता है, शक्तिहीनता शक्तिस्रोत में बदल जाती है, दुःख में बदल जाता है। भगवान् महावीर ने गौतम गणधर को 'उप्पन्ने इ वा विगमे इ वा धुवे इ वा'-इस त्रिपदी का मंत्र दिया। इसके माध्यम से उनकी अन्तश्चेतना जाग उठी। उन्होंने समूचे श्रुत का अवगाहन कर लिया। ज्ञान के सब द्वार खुल गए। शब्द में उतर सकने वाला ज्ञान उनसे अज्ञात नहीं रहा। वे श्रुत के पारगामी बन गए।

चिलातीपुत्र बहुत बड़ा चोर था। उसने एक कन्या की हत्या कर डाली। हाथ में उसका सिर है और तलवार खून से सनी हुई है। जंगल में दौड़ा जा रहा है। पुलिस पीछा कर रही है। उसने देखा, एक साधु ध्यान-मुद्रा में खड़ा है। साधु के पास जाकर बोला-कुछ बताओ। साधु ने केवल तीन शब्द उच्चारित किए-उपशम, संवेग, संवर। वह चोर से साधु बन गया। मंत्र-शक्ति के द्वारा उसका रूप ही बदल गया। मंत्र के द्वारा प्रकट होने वाली ऊर्जा से व्यक्ति में जो रूपान्तरण होता है, वह हम मानते हैं, जानते कम हैं। ओंकार का जप करने वाले भी ओंकार को मानते ज्यादा हैं, जानते कम हैं। दूसरे मंत्रों का जप करने वालों की भी यही दशा है। इसीलिए हमें शब्द की शक्ति में, मंत्र-शक्ति में विश्वास कम है। केवल मानने से काम नहीं चलेगा, कुछ जानें। एक मंत्र के साथ बहुत बातें जुड़ी हुई होती हैं। उन सबको जानना जरूरी होता है। ओंकार एकाक्षरी मंत्र है। यह कामना की पूर्ति करने वाला और मोक्ष देने वाला-दोनों है। इससे प्राणशक्ति का विकास होता है, इसलिए कामना पूरी होती है। इससे चित्त निर्मल होता है, इसलिए यह मोक्ष देने वाला है। हम किसी मंत्र की विशेषता से प्रभावित होकर उसका जप शुरू कर देते हैं। किन्तु समग्र जानकारी के अभाव में पूरा लाभ नहीं उठा पाते। मंत्र के जप का पहला तत्त्व है-उच्चारण कैसे होना चाहिए, वह नहीं होता। शब्द शास्त्र के अनुसार उच्चारण के आठ स्थान है-वक्ष, कंठ, सिर, जिह्वामूल, दांत, नासिका, ओष्ठ और तालु। किन्तु यह बात बहुत स्थूल जगत् की बात है। इससे पहले वह उच्चारण न जाने कितनी अवस्थाओं को पार कर जाता है। उसका प्रारम्भ मूलाधार या शक्तिकेन्द्र से होता है। फिर वह तैजस-केन्द्र, आनन्द केन्द्र और विशुद्धि केन्द्र को पार कर तालु के पास आता है और दर्शन केन्द्र-भृकुटि के मध्य तक पहुंच जाता है। उस स्थिति में उसकी तेजस्विता प्रकट होती है। उच्चारण के बारे में सम्यग्ज्ञान नहीं होता है तो जप से जिस लाभ की आशा की जाती है, वह घटित नहीं होता। मंत्र-शास्त्र बतलाते हैं-भाष्य-जप से जो लाभ होता है, उससे हजार गुना लाभ अन्तर् जप से होता है और अन्तर् जप से जो लाभ होता है, उससे हजार गुना लाभ मानसिक जप से होता है। लाभ की दूसरी स्थिति है। यदि हम केवल शब्द के साथ चलें, अर्थ की भावना न करें तो जो लाभ मिलना चाहिए, वह नहीं मिलता। जप की यात्रा शब्द से शुरू होती है। फिर शब्द छूट जाता है, केवल अर्थ शेष रह जाता है। हम श्रौत भावना को छोड़कर आर्थी भावना तक पहुंच जाते हैं-ज्ञानात्मक स्थिति में पहुंच जाते हैं। उस समय मंत्र चैतन्य होता है-मंत्र का जागरण होता है, उसकी तेजस्विता प्रकट होती है।

ओंकार के साथ रंगों का समायोजन करने से उसका जप और शक्तिशाली हो जाता है। शान्ति, पुष्टि और मोक्ष के लिए यदि ओंकार का जप करना है तो श्वेतरंग के ओंकार का जप किया जाता है। विभिन्न चैतन्य-केन्द्रों को जागृत करने के लिए विभिन्न रंगों के ओंकार का जप करना होता है। ज्ञान-तन्तुओं को सक्रिय बनाने के लिए पीले रंग के ओंकार का जप करना होता है और ऊर्जा की वृद्धि के लिए लाल रंग के ओंकार का जप करना होता है। जप के सारे पहलुओं को समझकर यदि हम उसका प्रयोग करें तो ओंकार एक शक्तिशाली साधन है-आत्माभिव्यक्ति का, मन को निर्मल करने का तथा अनेक लब्धियों और सिद्धियों को प्राप्त करने का। ❑

योगसत्य से क्या मिलेगा ?

आचार्य महाश्रमण

प्रश्न किया गया-जोगसच्चेणं भंते! जीवे किं जणयइ?भंते! योगसत्य से जीव क्या निष्पन्न करता है?उत्तर दिया गया-जोगसच्चेणं जोगं विसोहेइ। योगसत्य से योग विशुद्ध बनता है।

जैन वाङ्मय में योग की अनेक परिभाषाएं प्राप्त होती है। पतंजलि का अष्टांग योग प्रसिद्ध है। मेरी दृष्टि के अनुसार पातंजल योगदर्शन का अष्टांग योग अपने आपमें काफी परिपूर्ण है। उसमें सुन्दर समावेश किया गया है। वहां आचार शुद्धि का भी उल्लेख है और प्रायोगिक साधना का भी निर्देश है। शरीर की दृष्टि से जहां आसन आदि का महत्व है तो अध्यात्म की उच्च भूमिका की दृष्टि से धारणा, ध्यान, समाधि आदि का भी निर्देश प्राप्त होता है। इन्द्रिय संयम के लिए प्रत्याहार का निर्देश है। कुल मिलाकर एक सुन्दर समवाय बन जाता है।

जैन दर्शन में योग शब्द को मन, वचन, काय की प्रवृत्ति के अर्थ में प्रयुक्त किया गया है। चंचलता योग है। जहां, निवृत्ति है वहां अयोग है। जहां प्रवृत्ति है वहां योग है। शास्त्रकार ने जो प्रश्न किया है, वहां इसी योग के संदर्भ में है। हमारा मन सम्यक्तया प्रवृत्त हो, हमारा वचन सम्यक्तया प्रवृत्त हो, हमारा शरीर सम्यक् चेष्टाएं करें, इस प्रकार का अभ्यास करने से योग निर्मल बन जाएंगे, विशुद्ध बन जाएंगे।

मन में अशुभ विचार आता है तो हमारा मन मलिन बन जाता है। वाणी के साथ यदि कषाय जुड़ जाता है, गुस्से में आकर अशिष्ट शब्दों का प्रयोग करना, जान-बूझकर झूठ बोलना, किसी को बदनाम करना, इस प्रकार के प्रयोग से वचन मलिन बन जाता है। शरीर के द्वारा किसी को कष्ट देना, तकलीफ देना, प्रमाद करना, भोगात्मक प्रवृत्ति करना शरीर का अशुद्ध योग है। मन, वचन और शरीर की शुभ प्रवृत्ति करने से परिणाम यह आएगा कि हमारे योग निर्मल बन जाएंगे। योग विशुद्ध बन जाते हैं तो एक बड़ी साधना हो जाती है। यों तो अयोग अवस्था को प्राप्त करना साधक का परम लक्ष्य होता है। अयोग की साधना नहीं है तो योग शुद्ध नहीं होगा। जैन वाङ्मय में दो शब्दों का प्रयोग किया गया है समिति और गुप्ति। समिति जहां सम्यक् योग है, वहां गुप्ति योग निरोध है। अशुभ प्रवृत्ति से, अशुभ विषयों से, अशुभ योगों से अपने आपको बचा लेना गुप्ति है। अगर हमें योगसत्य को प्राप्त करना है तो गुप्ति की साधना अनिवार्य है। उसके बिना योगसत्य हो नहीं सकता। योग सत्य के बिना योगों की विशुद्धि भी हो नहीं सकती। साधक यह ध्यान रखे कि मेरे द्वारा अशुद्ध योगों का प्रवर्तन न हो जाए। योगों में भी विशेष रूप से मनयोग अशुभ न हो जाए, इस बात के प्रति जागरूक रहे। एक आदमी जीवनभर मनयोग को अशुभ नहीं होने देता है तो मेरा निश्चित मत है कि उसका बेड़ा पार हो जाएगा। वह कभी डूब नहीं सकता। एक मन ही आदमी के बन्धन और मुक्ति का कारण बनता है। अगर आदमी का मन शुभ है तो गहरा बन्धन नहीं होगा।

जैनदर्शन में दो प्रकार के बंध बताए गए हैं-ईर्यापथिक बंध और साम्परायिक बंध। ईर्यापथिक बंध मात्र वीतराग के होता है। यह बंध बहुत हल्का होता है। लम्बे समय तक टिकने वाले कर्म का बंध नहीं होता और आदमी को डुबोने वाला नहीं होता। हमें ध्यान देना चाहिए कि हमारा मन सत्य बना रहे, मानसिकता विशुद्ध बनी रहे। मन की सत्यता के साथ मोहकर्म का विलय हो। मोहकर्म यदि हल्का होता है या अलग होता है तो मनोयोग विशुद्ध बन जाता है और मोहकर्म मन पर हावी-प्रभावी हो जाता है तो मनोयोग मलिन बन जाता है। इसलिए मोहकर्म दूर रहे, प्रभावी न हो।

हम लोग जनता को प्रेरणा देते हैं कि नशा मत करो, लड़ाई-झगड़ा मत करो, गुस्सा मत करो, अहंकार मत करो आदि। इन सारी बातों का सार यही है कि योग शुद्ध बने रहें। योग शुद्ध रहेंगे तो तुम्हारा कल्याण हो जाएगा। मेरा मंतव्य है कि आज भी संत-महात्मा लोग जनता के उद्धार में अपना योगदान दे रहे हैं। वे अपने संभाषण के द्वारा लोगों को समझाते हैं और गलत कार्यों से निवारित करने का प्रयास करते हैं। उसका कुछ फल भी आ रहा है। आज भी जनता में भलाई जिन्दा रह सके और बुराइयों को ज्यादा ताकतवर बनने का मौका न मिले, ऐसा प्रयास किया जा रहा है। सबसे बड़ी बात है कि आदमी अपनी आत्मा को निर्मल बनाने का प्रयास करे। योगसत्य के द्वारा एक ऐसी शक्ति का जागरण किया जा सकता है जो हमारे योगों को विशुद्ध बना सकती है और परम शान्ति प्राप्त हो जाए, ऐसी भूमिका तैयार कर सकती है। हमारे योग निर्मल बनें, इसके लिए अपेक्षा है कि हमारा राग-द्वेष का भाव शांत हो। जहां-जहां राग-द्वेष का प्राबल्य होगा, वहां-वहां हम योगसत्य से दूर चले जाएंगे और जितना-जितना राग-द्वेष शान्त होगा, उतने-उतने हम ऊपर उठ जाएंगे।

आदमी के सामने समस्याएं आती है। वह कई बार घबरा जाता है, तनावग्रस्त हो जाता है। हम तनावग्रस्त न बनें, समस्या को देखना सीख जाएं, शांतभाव से उसे समझने का प्रयास करें और उसका हल खोजें। समस्या से कभी निराश न बनें, दुःखी न बनें। इस तथ्य को एक अध्यापक ने अपने विद्यार्थियों को प्रायोगिक उदाहरण से समझाने का प्रयास किया। अध्यापक महोदय ने पानी से भरा हुआ एक गिलास हाथ में लिया और विद्यार्थियों से पूछा-प्यारे विद्यार्थियो! यह गिलास मेरे हाथ में है। इसे मैं थोड़ी देर अपने हाथ में रखूं तो क्या होगा?

विद्यार्थी-पांच-दस मिनट गिलास को हाथ में रखने से कोई खास तकलीफ नहीं होगी।

अध्यापक-अगर दो-ढाई घण्टे गिलास को हाथ में रखूं तो क्या होगा?

विद्यार्थी-सर! आपका हाथ दर्द करने लग जाएगा और भी कई कष्ट हो सकते हैं।

अध्यापक-यदि मैं दिनभर इस गिलास को हाथ में रखूं तो क्या होगा?

विद्यार्थी-सर! आपके लिए एम्बुलेन्स मंगानी पड़ेगी और आपको अस्पताल में भर्ती कराना पड़ेगा।

अध्यापक-यदि मैं थोड़ी देर बाद गिलास को नीचे रख दूं तो क्या होगा?

विद्यार्थी- सर! आपको आराम मिल जाएगा।

अध्यापक-विद्यार्थियो! हमारे जीवन में भी यदा-कदा समस्याएं आ सकती है। यदि हम दिनभर समस्याओं के बोझ को दिमाग में रखेंगे तो हमारा स्वास्थ्य खराब हो जाएगा, तनाव होगा और अनेक बीमारियों को पैदा होने का मौका मिल जाएगा। यदि हम थोड़ी देर समस्याओं को दिमाग में रखें, उन्हें समझें और समाधान करने का प्रयास करें और दिमाग को हल्का कर लें तो हमारा दिमाग ठीक रहेगा और स्वास्थ्य भी अच्छा रहेगा। इसी प्रकार हमारे भीतर राग-द्वेष के भाव ज्यादा रहेंगे तो हमारे योग अशुद्ध बन जाएंगे। हम योगसत्य से दूर चले जाएंगे। कई बार आदमी अपने चिन्तन के द्वारा दुःखी बन जाता है और चिन्तन के द्वारा सुखी बन जाता है। इसलिए राग-द्वेष मुक्त रहकर चिन्तन करें। योगसत्य को बनाए रखने के लिए अपेक्षा है कि राग-द्वेष के भावों से मुक्त रहें। फिर हम बिल्कुल मुक्त बन जाएंगे, हल्के हो जाएंगे, मनःप्रसत्ति प्राप्त हो जाएगी और हमें बड़ा आराम मिलेगा।

□

समस्या का समाधान संभव

साध्वी प्रमुखा कनकप्रभा

समस्याएं अनेक प्रकार की होती है। समस्याओं को 'सुरसा' संबोधन से उपमित किया जाता है और सुरसा स्वेच्छा से कभी भी, कितना ही बड़ा रूप धारण कर सकती है। समस्या छोटी हो, बड़ी हो, जीवन-पर्यन्त जीवन में आती रहती है। नाव में कहीं छिद्र हो जाए तो नौका-विहार करने वालों के लिए पानी एक समस्या बन जाता है। बुद्धिमत्ता इसमें है कि शीघ्र ही छिद्र को बंद कर पानी को अन्दर आने से रोकें। पानी की समस्या का फिर समाधान संभव है।

एक बार चूहों ने मिलकर एक बैठक आयोजित की। बैठक में विचारणीय मुद्दा था-बिल्ली की समस्या। पांच-सात चूहों को दबोच लेती थी। यदि यही क्रम चलता रहा तो एक दिन संभव है कि चूहों का वंश ही समाप्त हो जाए। चूहों को भविष्य की चिन्ता थी, वर्तमान की चिंता थी, इसलिए समाधान के लिए आपातकालीन बैठक बुलाई गई थी। चूहे बारी-बारी खड़े होते और अपनी मानसिक सामर्थ्य शक्ति के अनुसार हल बताते। परन्तु उन्हें ऐसा कोई समाधान का स्थायी बिन्दु नहीं मिल रहा था, जिससे समस्या को दूर किया जा सके। अन्त में एक वयोवृद्ध चूहे ने सुझाव दिया-'क्यों न बिल्ली के गले में एक घंटी बांध दें। जब वह हमारी ओर आएगी तो घंटी बजेगी, हम सतर्क हो जाएंगे और आने से पहले ही अपने-अपने बिलों में घुस जाएंगे। इस प्रकार हमारी सुरक्षा हो सकेगी।' सभी को सुझाव पसंद आ गया। सभी ने सुझाव को सहर्ष समर्थन दे दिया। इतने में एक तार्किक चूहा खड़ा होकर बोला-'बिल्ली के गले में घंटी बांधेगा कौन?जो घंटी बांधने जाएगा, वह स्वेच्छा से शहीद होने को जाएगा। बिल्ली के लिए तो यह और अच्छा हो जाएगा कि उसे चूहों के लिए कोई प्रयास भी नहीं करना पड़ेगा।' समस्या मुंह बाए ज्यों-की-त्यों खड़ी रही। बैठक के दरम्यान सभापति ने सभी चूहों से पूछा-'यह काम कौन कर सकता है।' अगली कतार में बैठे चूहे पिछली कतार की ओर बढ़ने लगे। हौसले के साथ काम करने का तरीका भी उन्हें मालूम नहीं था। अचानक दो चूहे सभापति के सामने आए और विनम्र भाव से बोले-'यह कार्य वे कर सकते हैं। काम का दायित्व उन्हें दे दिया जाए।' कई चूहों ने तो यहां तक कहा कि यह असंभव कार्य है। शत-प्रतिशत तुम्हारी जान जोखिम में रहेगी। काफी विरोध होने के बावजूद सभापति ने काम का दायित्व दोनों चूहों को सौंप दिया।

दोनों चूहों ने सबसे पहले यह जानकारी की कि बिल्ली खाने-पीने के लिए कहां-कहां जाती है, उसके जाने का समय क्या है, किस घर में बैठकर वह आराम से दूध पीती है?यदि गहराई से जांच-पड़ताल करने के बाद दोनों चूहे एक दवाई की दुकान में गए। वहां से उन्होंने नींद की गोलियां खरीदी। फिर रात्रि की बेला में उस घर में घुसे जहां प्रतिदिन बिल्ली दूध पी जाती थी। चूहों ने दूध में नींद की गोलियां मिला दी, और बिल्ली के आने का इन्तजार करने लगे सहसा चांद थोड़ा-सा बादलों की ओट में गया और अंधकार का मौका देखकर बिल्ली घर में प्रविष्ट हुई। दूध के पात्र के पास पहुंचकर उसने सारा दूध चन्द मिनटों में ही समाप्त कर दिया। नींद की गोली का असर हुआ और बिल्ली दूध के पात्र के पास ही सो गई और तब दोनों चूहों ने आराम से बिल्ली के गले में घंटी बांध दी।

चूहे नींद की गोलियां खरीदकर लाए या नहीं, दूध में डाली या नहीं, इस घटनाक्रम की गहराई में हम नहीं जाते परन्तु यह अवश्य मानकर चलें कि बिल्ली के गले में घंटी बांध पाना संभव है, असंभव नहीं। कोई भी समस्या ऐसी नहीं है जिसका समाधान निकाल पाना संभव न हो। हर समस्या का समाधान संभव है। ऐसा हो सकता है कि एक-दो या चार-पांच बार में समाधान न मिले परन्तु सकारात्मक दिशा में किए गए हर प्रयास से समाधान मिलता है, सफलता मिलती है, तिमिर की घटा दूर होती है और नई आशा का सूर्य उदित होता है।

यह सही है कि परिवार, समाज, संघ व संगठन के धरातल पर सामुदायिक जीवन के बीच जन-साधारण को समय-समय पर समस्याओं का सामना करना पड़ता है। चाहे पुरुष हो या महिलाएं, बच्चे हो या वृद्ध, सबके सामने समस्याएं अपना आसन बिछाएं रहती है। आखिर ये समस्याएं क्यों पैदा होती है?क्यों अपना सिर उठाती है। उन संदर्भों को जानना आवश्यक है।

पारस्परिक संवाद की कमी

वर्तमान समय में भाग-दौड़ का जीवन हम सभी जी रहे है। हर व्यक्ति यह कहता नजर आएगा कि अभी समय नहीं है, व्यस्तता ज्यादा है। ऐसे में, ऐसे अनेक स्थल और प्रसंग होते है, जहां हमारा संबंध प्रत्यक्षतः अल्प या न के बराबर होता है। क्या हुआ, क्या नहीं हुआ, इसकी जानकारी हमें किसी व्यक्ति से या किसी स्रोत से ही मिलती है। परिणामतः तथ्य के सम्पूर्ण सत्यांशों से हम अनभिज्ञ रहते है। वे ही कथ्य और तथ्य जब एक समस्या का रूप लेकर हमारे जीवन पर असर करने लगते है तो हम उनसे प्रभावित होते है। उसके समाधान का तरीका परस्पर मिल-बैठकर बातें करने से निकल सकता है परन्तु इसके लिए भी हमारे पास समय का अभाव है। परस्पर प्रत्यक्ष संवाद न होने से कम्युनिकेशन गेप बढ़ता है और कुछ ऐसे तथ्य जो समस्या के अंदर शामिल नहीं है, उनके प्रति भी मन में संदेह पैदा होने लगता है। दूरियां मन-ही-मन बढ़ने लगती है, भावनाएं बद्धमूल होने लगती है और समस्या का स्वरूप दिनों-दिन विकराल होता जाता है। उस स्थिति में यदि सकारात्मक सोच के साथ कुछ समय लगाकर परस्पर टेबल-टॉक कर लें तो शीघ्र ही समस्या से निजात पाई जा सकती है।

कहने का तरीका

एक छोटा-सा कार्यकर्ता अथक श्रम करते-करते बड़ा काम करने लगता है। समाज के लोग कभी व्यंग्य भाषा में कह देते है-'आजकल तो तुम्हारी पावली भी एक रुपए में चलने लगी है।' वैसे ही समाज में कोई व्यक्ति दृष्टिहीन है। लोग उसे कटाक्ष करते हुए अंधा कह देते हैं। इस रूप में बोलना भले ही पुष्ट कर दे, वक्ता के अहं इसका असर श्रोता पर अच्छा नहीं पड़ता। श्रोता की आत्मा भीतर तक आंदोलित हो जाती है और वाणी का तीर जिगर को बींध देता है। अक्सर हम उसके परिवार, समाज में वाणी का संयम कायम नहीं रख पाते और आपस में एक-दूसरे को चोट पहुंचा बैठते है। कई बार उस समय मन में प्रतिशोध की भावना जन्म ले लेती है। फिर तो कटु-वचनों की सीमा गाली-गलौच, मारपीट और हिंसात्मक प्रवृत्तियों तक ही सीमित नहीं रहती। बैर से बैर बढ़ता है-इस कथन को सत्यापित होने का मौका मिल जाता है। वस्तुतः आपसी द्वेष, पारिवारिक विघटन आदि स्थितियों के लिए वाणी का यह अविवेक ही जिम्मेदार है। सास-बहू के झगड़े, पति-पत्नी के बीच कटुता, भाई-भाई के बीच मनमुटाव,

संघ-समाज के धरातल पर मन-भेद आदि समस्याओं की शुरुआत वाणी के असंयम व असंयतता का दुष्परिणाम है। अपेक्षा यह है कि उस स्थिति में आप दिमाग को हमेशा ठंडा रखेंगे, दिमाग में एक आइस फैक्टरी स्थापित रखेंगे तो हमेशा नपी-तुली एवं संतुलित भाषा का उत्पादन होता रहेगा।

बात की पकड़

कभी-कभी परिवार, संघ और संगठन के धरातल पर कोई कड़ी बात कह दी जाती है। हो सकता है कि कहनेवाले ने सुर्खियां बनाने के लिए ऐसा कहा हो। ऐसा भी हो सकता है कि कहने वाले ने हमारे अन्दर कोई कमी या कमजोरी देखी हो और हमें सुधारने के लिए ऐसा कहा हो। पर हम बात को पकड़ लेते हैं। जगह-जगह उसकी चर्चा करते हैं कि इसने मुझे ऐसा कह दिया तथा हम भी मन बना लेते हैं कि समय आने दो, कभी उसका भी मुंह तोड़ के जवाब देंगे। बातों की पकड़ और बातों को मन में आश्रय देने से कभी-न-कभी तो ज्वाला भड़कती ही है, कभी न कभी तो विस्फोट होता ही है। इससे समस्या की और अग्नि अधिक भभकने लगती है। किसी ने अगर गाली दे भी दी और हमने यदि इस कान से सुनकर उस कान से निकाल दिया, मन में बिठाकर रखने की आग्रह-प्रवृत्ति नहीं रखी तो वह गाली हमारे पास रहेगी कैसे?वह तो हर समय कहने वाले की ही

कसौटती रहेगी कि उसने उस समय अपशब्दों का इस्तेमाल कर दिया था। किसी के कुछ कह देने मात्र से हमारे शरीर में फोड़ा पैदा नहीं होता, प्रत्युत् कहने से कहने वाले का मुंह बिगड़ता है।

भगवान महावीर की वाणी का एक सूक्त हमें प्रेरित करता है-'अप्पा कत्ता विकत्ता य, दुहाण य सुहाण य।' आत्मा अपना कर्ता और भोक्ता स्वयं है, आत्मा ही अपने आपको दुखी बनाती है और आत्मा ही अपने आप को सुखी बनाती है। सुख-दुख के सृजनकर्ता हम स्वयं हैं। वैदिक शास्त्रों में लिखा है-'यथारुचि रोचते विश्वं, तथेदं परिवर्तते।' व्यक्ति की जैसी रुचि होती है, वह उसके अनुरूप अपना संसार बसा लेता है। आप कभी यह स्वीकार न करें कि कोई दूसरा व्यक्ति आपको दुखी बना रहा है। दूसरे व्यक्ति के कथ्य और कृत्य से हमेशा निर्लिप्त एवं अप्रभावित रहें। देखिए, तूफान लाख चलते हैं, आंधियां हजारों उठती हैं, झंझावात सैकड़ों आते हैं, हिमालय क्या कभी उनसे हिलता है?प्रकम्पित होता है?सच्चाई यह है कि सहने की क्षमता के अभाव में ही दूसरा हमें दुखी बना जाता है और हम सुखीराम से दुखीराम बन जाते हैं। वैसी स्थिति में आवश्यक है-सहनशीलता और प्रभावित रहने की क्षमता का विकास करना।

इगो की टक्कर

बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में शिक्षा एवं तकनीकी के क्षेत्र में अप्रत्याशित विकास हुआ है। उसका परिणाम यह आया कि लोगों के पास आर्थिक समृद्धि बढ़ी। शिक्षा और समृद्धि की ऊंची मीनारों को देखकर मन में यह भावना भी पैदा हुई कि हम कुछ बन गए, हम कुछ हो गए। चिन्तन की इस धरती पर अहं की चेतना का भी विकास हुए बिना नहीं रहा। आज प्रायः हम यह देख रहे हैं कि अधिक पढ़े-लिखे भाई-बहनों का इगो प्रबल है तथा जिनके पास आर्थिक समृद्धि अधिक है, वहां भी इगो प्रॉब्लम जोर मारती है।

कई बार दो-चार व्यक्ति परिवार या समाज के धरातल पर ऐसे मिल जाते हैं जो शिक्षा और अर्थ के क्षेत्र में विशेष सामर्थ्यवान हैं। उनमें अपनी-अपनी बात स्थापित करने का आग्रह रहता है। प्रायः ऐसे व्यक्तियों का इगो आपस से टकराने लगता है जिससे समस्याओं का ज्वार उभर जाता है। उस समय स्थिति और अधिक विकट हो जाती है जब इगो भावना से ग्रस्त व्यक्ति अपने आवेगों-संवेगों पर नियंत्रण नहीं रख पाते। पढ़े-लिखे एवं आर्थिक दृष्टि से समृद्ध व्यक्ति भी इस प्रकार की भाषा का प्रयोग कर बैठते हैं जिसको सुनकर कानों में शीशा गर्म होकर पिघल उठता है। वाहन की टक्कर में संभव है कि व्यक्ति जीवित बच जाए परन्तु इगो की टक्कर में तो कितने-कितने लोगों का कॅरियर तक नेस्तनाबूद हो जाता है। यह हम सबके प्रत्यक्ष है।

अपेक्षा तो यह है कि इगो की भावना को सकारात्मक रूप में मोड़कर प्रभावी बनाने की कोशिश करनी चाहिए ताकि व्यक्तित्व का एक नया कर्तव्य उभरकर सामने आए। इगो से ग्रस्त व्यक्तियों को हमेशा अपनी जुबान पर 'शुगर फैक्टी' स्थापित किए रखना चाहिए ताकि इगो का स्वरूप विध्वंसात्मक न बने। संभव हो सके तो आपस में इगो को न टकराने दें। अपना इगो अपने पास रखें, दूसरे का इगो दूसरे के पास रहने दें। एक-दूसरे के इगो को छेड़ना मधुमक्खी के छत्ते में हाथ डालने के समान होता है।

हर समस्या का समाधान ढूंढा जा सकता है। बशर्ते कि हमारा सम्मान विधायक चिंतन और स्वस्थ दृष्टिकोण दिशा में हो की काय समस्या के सामने घुटने टेकते हैं। भारतीय सभ्यता और संस्कृति में घुटने टेकने की समस्या ही नहीं है। पांडव पांच थे परन्तु उन्होंने शतसंख्यी कौरवों के सामने हाथ नहीं पसारे। सत्य कभी भी असत्य के सामने झोली नहीं फैलाता। इसलिए न थककर बैठना चाहिए, न हाथ पर हाथ धरना चाहिए, न मन में निराशा लानी चाहिए, प्रत्युत् समस्याओं से सदैव लोहा लेना चाहिए। संभव है कि परिणाम दो-चार प्रयासों के बाद आए, संभव है कि सफलता कुछ देर से मिले।

समस्या और समाधान के संदर्भ में राष्ट्रकवि दिनकर की इन ओजस्वी पंक्तियों के साथ समाहार करना उपयुक्त लगता है-

'जब आता है तूफान बवंडर भी उठकर,
जनता तब कोपाकुल हो भृकुटि चढ़ाती है।
दो राह, समय के रथ का घर्घर-घर्घर नाद सुना,
सिंहासन खाली करो कि जनता आती है।।'

❐

आसनों के प्रकार

– मुनि किशनलाल

आसन के अभ्यास से स्थिरता और लघुता का विकास होता है। उससे मानसिक एकाग्रता और स्फूर्ति बढ़ती है। लघुता से प्रसन्नता उत्पन्न होती है। व्यक्ति स्वास्थ्य का अनुभव करता है। जाबाल एवं शांडिल्य उपनिषद् में आसन-विजय करने वाले को तीनों जगत् का विजेता बताया गया है-'येनासनं विजितं जगत्त्रय तेन विजितं भवति'। आसन-सिद्धि या आसन-विजय तब ही माना जाता है जब साधक तीन घंटे से अधिक एक आसन में स्थिर और सुखपूर्वक बैठ सकता है। आसन की स्थिरता के लिए सत्वगुण का विकास आवश्यक है। आसन के अभ्यास से शरीर की जड़ता और तमोगुण का विलय होता है। मन की चंचलता मिटती है। परिणामतः साधक की आयु पर विजय होने लगती है। आसन सिद्ध करने से पूर्व प्राणायाम द्वारा नाड़ी शोधन आवश्यक है। नाड़ी शोधन से ही दीर्घ काल तक आसन से सुखपूर्वक स्थिर रहा जा सकता है। आसन और प्राणायाम एक-दूसरे को प्रभावित करते हैं। आसन-सिद्धि के लिए आसन का अभ्यास और स्थिरता जरूरी है। हालांकि आसन और प्राणायाम को महर्षि पतंजलि ने पृथक-पृथक अंग के रूप में स्वीकृत किया है।

आसनों के प्रकार

आसन शरीर की विभिन्न आकृतियों से बनते हैं। ये आकृतियां जीवों की शरीर-रचना एवं आकारों से पहचानी जाती है। इसलिए 84 लाख जीव-योनियों की शरीर-स्थिति के अनुसार 84 लाख आसन बन जाते हैं। इन आसनों के अभ्यास और साधना के लिए अनेक जीवन चाहिए। साधना की दृष्टि से भी सब का महत्वपूर्ण उपयोग नहीं है। मनुष्य इस छोटे-से जीवन में कितने आसनों का अभ्यास कर सकेगा।घेरण्ड संहिता में 84 लाख आसनों का विधान किया गया है उन में भी 32 आसन ही श्रेयस्कर है।

श्री गोरखनाथ के शिष्य स्वात्मारामजी को इतने आसन भी अधिक महसूस हुए। उन्होंने हठयोग प्रदीपिका में ग्यारह आसनों की चर्चा की है। किसी परम्परा में चार आसनों का उल्लेख किया गया है। कहीं-कहीं सिद्धासन और कमलासन केवल दो आसनों का ही विधान किया गया है। अंत में आसनों की महिमा का प्रदर्शन करते हुए कहा गया कि केवल एक सिद्धासन ही पर्याप्त है:

एकं सिद्धासनं प्रोक्तं, द्वितीयं कमलासनम्।
नासनं सिद्धसदृशं, न कुम्भं केवलोपमः।
न खेचरी समामुद्रा, न नादसदृशो लयः।।

सिद्धासन के समान कोई दूसरा महत्वपूर्ण आसन नहीं है।

इस से आगे योगकुण्डल्युपनिषद् में तो यहां तक कह दिया कि सिद्धासन, पद्मासन, षट्चक्र, सोलह आधार, तीन लक्ष्य और पांच आकाश जो शरीर में विद्यमान है उनको जो नहीं जानता है उसकी मुक्ति कैसे हो सकती है?

षट्चक्रं षोडशाधारं त्रिलक्ष्यं व्योम पंचकम्।
स्वदेहे यो न जानाति, तस्य सिद्धिः कथं भवेत्।

आसनों का परिणाम :

आसन करने से शरीर स्वस्थ बनता है, यह गौण तथ्य है। आसनों का मूल उद्देश्य है-स्थिरता, एकाग्रता और चित्त की निर्मलता। यह तब प्राप्त हो सकती है जब व्यक्ति आसनों का अभ्यास नियमित करे। पतंजलि आसनों के परिणाम को दर्शाते हुए कहते है-'ततो द्वन्द्वानभिघातः', आसनों से सर्दी, गर्मी, प्रियता, अप्रियता आदि द्वन्द्वों का अभिघात हो जाता है। आसनों से रजोगुण का विनाश होता है। सात्विक गुण का विकास होता है। सात्विक गुण के विकास से ही साधना का मार्ग स्पष्ट होता है। व्यक्ति सिद्धि को प्राप्त होता है। आसन के अभ्यास से व्यक्ति का शारीरिक, मानसिक और भावनात्मक स्वास्थ्य ही ठीक नहीं होता, बल्कि उससे जो एक महत्वपूर्ण उपलब्धि होती है वह है-आध्यात्मिक स्वास्थ्य। शरीर की स्थिरता से ही मन की एकाग्रता बढ़ती है। मन की एकाग्रता ही अध्यात्म के द्वार उद्घाटित होते है, जिससे व्यक्ति अपने स्वरूप में अवस्थित होता है। प्रेक्षा साधना की दृष्टि से आसन-प्राणायाम की श्रेणियां प्रस्तुत की जा रही है :

आसन की श्रेणियां

1. शयन-स्थान : लेट कर किए जाने वाले आसन।

2. निषीदन-स्थान : बैठ कर किए जाने वाले आसन।

3. ऊर्ध्व-स्थान : खड़े होकर किए जाने वाले आसन।

4. विशिष्ट आसन।

विधिवत् शरीर को स्थिर बना कर जो आसन किया जाता है वह काय गुप्ति है। काय गुप्ति शरीर का संयम है। यह तीनों प्रकार से हो सकता है-लेट कर, बैठ कर और खड़े हो कर। इन तीनों प्रकार के आसनों को सिद्ध किया जा सकता है। आसन की सिद्धि सरलता से प्राप्त की जा सके इसके लिए सर्वप्रथम शयन-स्थान से आसन का प्रारम्भ करना शरीर विज्ञान की दृष्टि से उपयोगी है। बच्चा प्रारम्भ में लेट कर क्रिया करता है फिर बैठता है और फिर खड़े हो कर अपनी जीवन-यात्रा करता है। अतः आसन का क्रम भी शयन, निषीदन और ऊर्ध्व स्थिति के क्रम में रखा गया है। शयन-स्थान के अन्तर्गत चुने हुए आसनों का विवरण दिया गया है। लेटने पर जो-जो अंग प्रभावित होते हैं उनको लक्षित कर शयन-आसनों का चुनाव किया जाता है। शयन-स्थान वाले आसन पीठ के बल और पेट एवं सीने के बल लेट कर किए जाते हैं, वे निम्नलिखित है:-

शयन-स्थान लेटकर किए जाने वाले आसन

1. शवासन (कायोत्सर्ग) 2. उत्तानपादासन, 3. पवनमुक्तासन, 4. सर्वांगासन, 5. हलासन, 6. कर्ण पीड़ासन, 7. मत्स्यासन, 8. मकरासन, 9. भुजंगासन, 10. शलभासन, 11. धनुरासन, 12. हृदयस्तम्भासन, 13. नौकासन।

निषीदन-स्थान : बैठकर किए जाने वाले आसन

1. सुखासन, 2. स्वस्तिकासन, 3. पद्मासन, 4. योगमुद्रा, 5. बद्धपद्मासन, 6. उत्थित पद्मासन, 7. उत्कटासन, 8. गोदुहासन, 9. गोमुखासन, 10. जानुशिरासन, 11. पश्चिमोत्तानासन, 12. अर्द्धमत्स्येन्द्रासन, 13. उष्ट्रासन, 14. सिंहासन, 15. ब्रह्मचर्यासन, 16. सिद्धासन, 17. हंसासन, 19. कुक्कुटासन

ऊर्ध्व स्थान : खड़े हो कर किए जाने वाले आसन :

1. समपादासन, 2.ताड़ासन, 3. हस्तपादनासन, 4. त्रिकोणासन, 5. मध्यपादशिरासन, 6. महावीरासन, 7. हस्तिशुण्डिकासन, 8. कोणासन, 9. गुरुड़ासन, 10. पाद हस्तासन।

विशिष्ट आसन :

1. शीर्षासन, 2. अर्ध शंख प्रक्षालन, 3. मयूरासन, 4. चक्रासन, 5. उड्डियासन।

प्रेक्षा-कथा

संपादक - मुनि दुलहराज

अचिकित्स्य

एक रोगी डॉक्टर के पास गया। आंख की शिकायत थी। उसने कहा, 'डॉक्टर साहब! आंख से कुछ भी दिखाई नहीं देता। कुछ इलाज कीजिए।'

डॉक्टर ने कहा, 'पढ़ो उस बोर्ड पर क्या लिखा है?'

'डॉक्टर साहब! अक्षर दिखाई नहीं देते।'

'बोर्ड की ओर देखो।'

'डॉक्टर साहब! बोर्ड कहां है?'

'सामने की भीत पर बोर्ड टंगा है।'

'डॉक्टर साहब! भीत कहां है?'

'अब तुम चले जाओ। तुम्हारा इलाज होने वाला नहीं है।'

हमारे बहुत सारे ग्रंथ, बहुत सारे सिद्धान्त और बहुत सारे शास्त्र प्रकाश देते हैं, परन्तु जिसकी बुद्धि में ग्रहणशीलता नहीं है, उसके लिए कोई अर्थ नहीं है, शास्त्र का, ग्रंथ का और सिद्धान्त का।

खांसी में दही

एक व्यक्ति बीमार हो गया। दही का बड़ा शौकीन था। वह बीमारी में भी उसे नहीं छोड़ता था परन्तु दही और खांसी दोनों एक साथ नहीं चल सकते। वैद्य आता है, दवा देता है और कहता है कि दही का परहेज रखना, दही मत खाना।

रोगी कहता है, 'मुझसे ऐसी बात मत करो। मैं दही नहीं छोड़ सकता।'

एक वैद्य बड़ा अनुभवी था। उसने पूछा, 'आपको खांसी आती है?'

रोगी- 'हां, खांसी आती है।'

वैद्य-'क्या उपचार किया।'

रोगी-'क्या उपचार करूं, जो भी आता है, कहता है दही मत खाना। बिना दही खाए मैं रह नहीं सकता। इसलिए बात बनती नहीं।'

वैद्य-'मैं आपको सलाह देता हूं कि आप दवा भी खाएं और दही भी खाएं। आप दही जरूर खाएं।'

रोगी-'आप बहुत अनुभवी हैं, अगर आप पहले आ गए होते तो मेरी खांसी कभी की ठीक हो जाती। वैद्यजी! कारण क्या है कि सब दही खाने को मना करते हैं और आप दही खाने के लिए कहते हैं?'

वैद्य-'वे अनुभवी नहीं थे। एक दही के कितने रूप होते हैं, वे नहीं जानते। दही को मथ दिया तो खाने में दोष नहीं। किन्तु मैं आपको कहता हूं कि दही खाना चाहिए, मथा हुआ नहीं। कम-से-कम आपको ये तीन लाभ तो होंगे ही-

कासे दध्नो भोजनेन, लाभाः सन्ति त्रयो ध्रुवम्।
न वार्धक्यं न वा चौर्यं, न श्वा भक्षयति क्वचित्।।

१. खांसी में दही खाने वाला कभी बूढ़ा नहीं होता।

२. खांसी में जो दही खाता है, उसके घर कभी चोरी नहीं होती।

३. खांसी में जो दही खाता है, उसे कुत्ता नहीं काटता।

रोगी ने तीनों बातों को सुनकर तत्काल कहा, 'अब मैं दही कभी नहीं खाऊंगा।'

वैद्य ने कहा-'नहीं, आपको खानी चाहिए।'

रोगी ने कहा-'नहीं, कभी नहीं।'

बुढ़ापा किसको आए, जब वह पहले ही चल बसे। चोरी कैसे हो, जब दही खाने वाला सारी रात खांसता रहे। खांसी में दही खाने वाला बिना लाठी के सहारे चल नहीं सकता और लाठी हाथ में हो तो कुत्ता कैसे काटेगा?

जैन दर्शन और अनेकान्त -1

- कुमार अनेकान्त जैन

जीवन न केवल बहुआयामी है अपितु बहुरूपी भी है। इस विविधता-बहुल जीवन की गहन अनुभूति से दो प्रकार की चिन्तन धाराओं का विकास हुआ।

(1) प्रथम एकत्ववादी विचारधारा जो विविधता अथवा अनेकता को तात्विक रूप से स्वीकार नहीं करती।

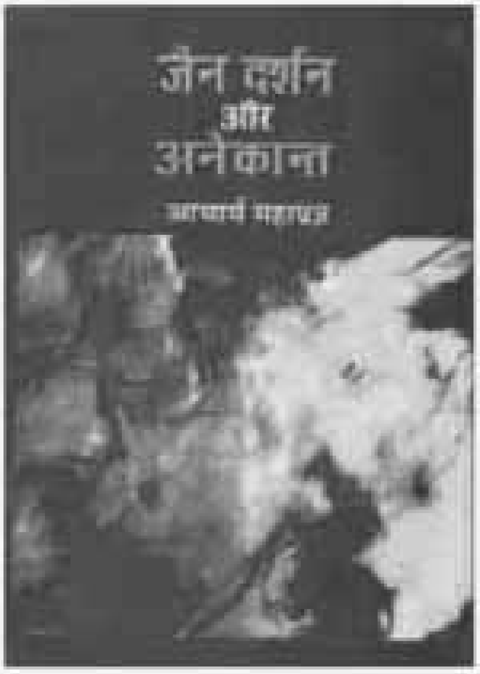

(2) दूसरी अनेकान्तवादी विचारधारा जो विविधताओं का तात्विकरण करती है।

इन दोनों धाराओं का अपना इतिहास, तर्क क्षेत्र तथा विवेचन विधि है जो वैचारिक जगत् को सदियों से प्रभावित करते रहे हैं।

भारत विविधताओं का देश है। यहां हजारों साल से विविध धर्मावलम्बी अनेक भाषाभाषी ऐसे लोग रहते हैं जिनका खान-पान और रहन-सहन एक दूसरे से भिन्न है। भूमण्डलीकरण के साथ यह विविधता और बढ़ेगी। दूसरी ओर हमारी राष्ट्रीय आवश्यकता यह है कि सभी भारतीय एकता के सूत्र में गुंथे रहें। इस एकता की सिद्धि के लिए यदि हम अधिनायकवादी ढंग से भिन्नता को समाप्त ही करना चाहें तो पारस्परिक कटुता तो बढ़ेगी ही, हमारा यह प्रयत्न सफल भी नहीं होगा। अतः व्यावहारिक विकल्प यह है कि हम विविधता को मान्यता दें और साथ ही विविधता में ओतप्रोत एकता को भी उजागर करें ताकि जहां एक ओर प्रत्येक भारतीय अपनी-अपनी पद्धति से जी सके वहां दूसरी ओर वह राष्ट्र के साथ भावनात्मक रूप से जुड़ा भी रह सके। अनेकान्त की दार्शनिक दृष्टि इस राष्ट्रीय महत्त्व की समस्या के समाधान में अमूल्य योगदान दे सकती है, इसलिए अनेकान्त का उचित परिप्रेक्ष्य में विश्लेषण होना चाहिए। इस दृष्टि से आचार्य महाप्रज्ञ की कृति 'जैनदर्शन और अनेकान्त' वस्तुतः अभिनन्दनीय है।

आलोच्य ग्रन्थ में अनेकान्त, स्याद्वाद तथा नयवाद विषय पर गंभीर चर्चायें हैं। आचार्य महाप्रज्ञ का अनेकान्त को लेकर अत्यन्त उदारवादी दृष्टिकोण है। वे ग्रंथ की प्रस्तुति में कहते हैं कि-

'अनेकान्त मूलतः मैत्री का वैचारिक सिद्धान्त है। अनेकान्त का अर्थ है-अभिन्नता को स्वीकार करना और भिन्नता में सहअस्तित्व की संभावना को खोजना।'

जब-जब अनेकान्त के प्रचार का प्रसंग आता है तब-तब जैनेतरों की तरफ से यह प्रश्न उठता है कि अनेकान्त यदि समस्त समस्याओं का समाधान करने में सक्षम है तो सर्वप्रथम जैन समाज जिसने अनेकान्त विरासत में पाया है, स्वयं पारस्परिक मतभेदों का समाधान खोजने में अक्षम क्यों है?यह प्रश्न निरुत्तरित ही है, क्योंकि सबकी अपनी-अपनी ढपली है, अपना-अपना राग है। आकाश अखण्ड द्रव्य है क्या उसका विभाजन संभव है?धरती के बंटवारे हो जाते है-यह हिन्दुस्तान, यह पाकिस्तान, यह रूस, यह चीन इत्यादि। किन्तु मनुष्य अपने बंटवारे की प्रवृत्ति कहीं नहीं छोड़ता, वह अभेद में भी भेद कर देता है। क्योंकि उसका दृष्टिकोण व्यवहारिक होता है।

हिन्दुस्तान सिर्फ उत्तर से दक्षिण, पूरब से पश्चिम तक एक नहीं है। वह धरती से आकाश तक भी एक है। हिन्दुस्तान के आकाश पर बिना अनुमति के अन्य देश का कोई भी विमान उड़ाया नहीं जा सकता। आकाश भी बंट गया। अनेकान्त आकाश की भांति ही अखण्ड स्वरूप वाला है। वह सबको एक-सा अवगाहन, एक सी छत देता है। फिर भी हम भेद डालते ही हैं। इस विषय में आचार्य महाप्रज्ञ का चिन्तन बहुत उदार दिखायी देता है-

'जैन परम्परा में आज अनेक सम्प्रदाय है, उनमें अनेक मतभेद भी है। यदि अनेकान्त के आधार पर मतभेद का मूल खोजा जाये, भिन्न विचारों की समीक्षा की जाये तो शायद भेद के लिए कितना बचेगा, मैं कह नहीं सकता। हो सकता है कुछ भी न बचे। किन्तु इस दिशा में बहुत कम काम हुआ है। अनेक प्रसंगों में आग्रह बढ़ाने में ज्यादा रस लिया गया, अनेकान्त का प्रयोग नहीं किया गया।' (पृष्ठ 147)

समीक्ष्य ग्रन्थ दो भागों में विभाजित है। प्रथम भाग में मुख्यतः अनेकान्त पर विचार किया गया है, द्वितीय भाग में जैन दर्शन के कुछ अन्य महत्वपूर्ण पक्षों पर भी विचार किया गया है।

प्रथम भाग-अनेकान्त

अनेकान्त को चार अध्यायों में सरल रीति से समझाया गया है। जिसमें द्वैतवाद, स्याद्वाद और जगत्, नयवाद तथा सद्वाद की चर्चा की है।

द्वैतवाद

अद्वैत को समझने के लिए द्वैतवाद को समझना अत्यन्त आवश्यक है। द्वैत का आधार भेद है और अद्वैत का आधार अभेद है। जैन दर्शन भेदाभेदात्मक अस्तित्व को मानता है। उसके अनुसार जगत् में द्वैत भी है, अद्वैत भी है। सत् सामान्य अद्वैत है, विशेष की दृष्टि द्वैत है। आचार्य महाप्रज्ञ लिखते हैं-

'अनेकान्त के अनुसार द्वैत और अद्वैत भेद और अभेद के आधार पर प्रतिष्ठित है। द्वैत के बिना द्वैत नहीं हो सकता। अभेद का चरम बिन्दु है अस्तित्व। उसकी अपेक्षा अद्वैत सिद्ध होता है। अपने-अपने विशेष गुण की अपेक्षा से अद्वैत सिद्ध होता है। अपने-अपने विशेष गुण की अपेक्षा से द्वैत सिद्ध होता है।' (पृष्ठ 7)

जगत् में जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश, काल-ये छह द्रव्य है। सत्

सामान्य इन सभी में विद्यमान है, इसलिए सत् की अपेक्षा अभेद है, अद्वैत है।

अपनी-अपनी विशेषताओं के कारण एक दूसरे से पृथक है, इसलिए भेद है, द्वैत है। प्रत्येक द्रव्य स्वयं अपने आपमें भी द्वैत-अद्वैत, भेद-अभेद को समाहित किये हुए है। उन्हीं के शब्दों में-

'जैसे दो द्रव्यों में अभेद और भेद का संबंध पाया जाता है, वैसे ही एक द्रव्य में अभेद और भेद-दोनों पाये जाते हैं। गुण और पर्याय द्रव्य (द्रव्य की प्रदेश राशि) में होते हैं। उसके बिना नहीं होते। इस अपेक्षा से द्रव्य तथा गुण और पर्याय नहीं है। इस अपेक्षा से तीनों-द्रव्य गुण और पर्याय में भेद है। एक ही द्रव्य द्रव्य की दृष्टि से एक और पर्याय की दृष्टि से अनेक है।'

द्रव्य को समझना है तो गुण और पर्याय को भी समझना होगा। सम्पूर्ण द्रव्य का स्वरूप समझने के लिए 'प्रमाण' का विकास हुआ। केवल पर्याय को समझने के लिए 'नय' का विकास हुआ। आचार्य महाप्रज्ञ मानते हैं कि-

'जैन दर्शन में नयवाद का विकास पहले हुआ था और प्रमाणवाद का विकास बाद में।... समन्तभद्र और सिद्धसेन ने नय को ही प्रधानता दी। हरिभद्र और अकलंक के युग में 'प्रमाण' को प्रधानता मिल गई।' (पृष्ठ 16)

नय प्रमाण का अंश है

नयों का उल्लेख भगवती, कसाय पाहुड तथा षट्खंडागम में सर्वप्रथम प्राप्त होता है। यहां द्रव्यार्थिक, पर्यायार्थिक तथा नैगमादि नयों के आधार पर ही विषय का निरूपण किया गया है। उसके बाद अनुयोगद्वार सूत्र में सर्वप्रथम नैगमादि सात नयों की परिभाषा प्राप्त होती है। आचार्य महाप्रज्ञ ने अणुओगदाराइं का संपादन तथा विवेचन अत्यन्त श्रमपूर्वक वैज्ञानिक रीति से किया है। अनुयोगद्वार में नय की चर्चा नय प्रमाण के रूप में हुई है। आचार्य महाप्रज्ञ के अनुसार-

'यहां प्रमाण का प्रयोग व्यापक अर्थ में हुआ है। इससे प्रतीत होता है कि आर्यरक्षित के काल में नय को प्रमाण का अंश मानने का सिद्धान्त स्थापित नहीं हुआ था।' (अणुओगदाराइं, टिप्पणी-पृष्ठ 32)

उत्तरवर्ती आचार्यों ने नय को प्रमाण का अंश माना। आचार्य विद्यानन्द लिखते हैं-

नाप्रमाणं प्रमाणं वा नयो ज्ञानात्मको मतः।
स्यात्प्रमाणैकदेशस्तु सर्वथाप्यविरोधतः।।

अर्थात् नय न तो अप्रमाण है और न प्रमाण है। किन्तु ज्ञानात्मक है, अतः प्रमाण का एकदेश है। इसमें किसी प्रकार का कोई विरोध नहीं है।

नय को प्रमाण न कहकर प्रमाणांश कहा गया है। क्योंकि नय वस्तु के केवल एक धर्म को बतलाता है। वह वस्तु खंड का यथार्थ ग्रहण करता है। किसी वस्तु को नय के माध्यम से ही समझाया जा सकता है। हम उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य की चर्चा करते हैं। ध्रौव्य के रूप में द्रव्य को तथा परिवर्तनशील पर्याय को उत्पाद-व्यय समझाने के लिए कहते हैं। इसके लिए प्रायः घट का दृष्टान्त दिया जाता है। घट का उत्पाद होता है, टूट जाने पर घट का नाश हो जाता है किन्तु इस बीच मिट्टी उन दोनों अवस्थाओं में विद्यमान रहती है। अतः वह ध्रौव्य है-द्रव्य है। यदि अधिक सूक्ष्म दृष्टि से देखें तो वास्तविकता यह है कि जिसे हम द्रव्य कह रहे हैं वह मिट्टी भी पर्याय है। पुद्गल की पर्याय परमाणु और परमाणुओं का स्कन्ध मिट्टी। हम पर्याय को ही समझते हैं, उसे ही समझाते हैं। वो इसलिए कि पर्याय ही व्यक्त है। द्रव्य अव्यक्त है। पर्याय में भी व्यञ्जन पर्याय को हम कह सकते हैं, अर्थपर्याय को नहीं।

नय की वास्तविकता

आचार्य महाप्रज्ञ पर्याय को कहने वाले नय को ही वास्तविक मानते हैं। वे कहते हैं कि-

'सच्चाई यह है कि प्रमाण वास्तविक नहीं है। वास्तविक है नय। हम द्रव्यों को किसी एक या कुछ एक धर्मों के माध्यम से जानते हैं। अखण्ड द्रव्य का ज्ञान हमारे लिए संभव नहीं है। हमारा द्रव्य विषयक ज्ञान सापेक्ष है, निरपेक्ष नहीं है।.... अज्ञात के समुद्र में ज्ञात एक छोटे से द्वीप जैसा है। इस स्थिति में प्रमाण की वास्तविकता को बहुत मूल्य नहीं दिया जा सकता। नय एक वास्तविकता है। उसके द्वारा एक-एक धर्म का ज्ञान होता है और हमारा ज्ञान भंडार समृद्ध होता चला जाता है।.... हमारे ज्ञान में अनन्त ज्ञेय को जानने की क्षमता है पर जब तक वह पूर्ण रूपेण अनावृत नहीं होता, तब तक उसकी क्षमता पर एक आवरण रहता है। आवृत्त चेतना जब जानने को प्रवृत्त होती है तभी जानती है। जिस समय हम आंख से देखते हैं उस समय कान से नहीं सुनते और जिस समय कान से सुनते हैं उस समय आंख से नहीं देखते। देखने और सुनने का एक क्रम है। ये दोनों युगपद् नहीं होते। हमें ऐसा प्रतीत होता है कि हम एक साथ देख रहे हैं और सुन रहे हैं, किन्तु यह हमारी स्थूलदृष्टि है। सूक्ष्म दृष्टि के अनुसार देखने का समय भिन्न है और सुनने का समय भिन्न है। त्वरित कार्यों में हमें क्रम का पता नहीं चलता, इसलिए हम उन दोनों को एक साथ मान लेते हैं। जानने का यह क्रम नय की वास्तविकता को प्रमाणित करता है।' (पृष्ठ 17)

क्षयोपशम ज्ञान में द्रव्य पकड़ में नहीं आता, मात्र स्थूल पर्याय पकड़ में आती है। प्रमाण पकड़ में नहीं आता मात्र नय पकड़ में आता है। हमारे पास वस्तु को समझने का माध्यम नय ही है इसलिए हम उसे ही वास्तविक मानते हैं। प्रमाण भी वास्तविक है किन्तु केवली और सिद्ध के लिए क्योंकि द्रव्य उनकी ही पकड़ में आता है। हम पर्याय के पुजारी हैं। हम पूजा अर्चना भी पर्याय की करते हैं द्रव्य की नहीं। तीर्थंकर ऋषभदेव, तीर्थंकर महावीर, आचार्यगण और मुनिगण हम इनकी पर्याय के गीत गाते हैं। महावीर एक पर्याय है। पिता राजा सिद्धार्थ और माता त्रिशला ने महावीर एक पर्याय को जन्म दिया था। द्रव्य का कोई माता-पिता नहीं होता उसकी न तो उत्पत्ति होती है और न ही नाश। हम मूर्तियां भी पर्याय की लगाते हैं। फोटो भी पर्याय की ही लगाते हैं। कहानियां भी पर्याय की

ही सुनाते हैं। वो इसलिए क्योंकि हमारी स्थूल दृष्टि पर्याय को ही पकड़ पाती है। हमारी इन्द्रियों की सीमा पर्याय तक सीमित है। इसीलिए हम नय को वास्तविक मानते हैं। क्षयोपशम ज्ञान के माध्यम से द्रव्य के प्रति हमारी मान्यता हो सकती है। उसका अनुभव नहीं हो सकता। उसका अनुभव अतिन्द्रिय है। इसलिए प्रमाण की वास्तविकता और अवास्तविकता भी सापेक्ष कथन है।

व्यवहार नय की सापेक्ष वास्तविकता

जैन दर्शन में द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक ये दो मुख्य नय माने गये हैं। निश्चय नय और व्यवहार नय ये दो आध्यात्मिक नय कहलाते हैं। जहां द्रव्य की मुख्यता से कथन होता है उसे द्रव्यार्थिक नय कहते हैं तथा जहां पर्याय की मुख्यता से कथन होता है उसे पर्यायार्थिक नय कहते हैं। आचार्य अमृतचन्द ने निश्चय नय और व्यवहार नय की परिभाषा दी-आत्माश्रितो निश्चयः पराश्रितो व्यवहारः। जहां आत्मा की मुख्यता से कहा जाए वहां निश्चय नय और जहां आत्मा के अलावा पर पदार्थों की अपेक्षा से कहा जाये उसे व्यवहार नय कहते हैं। द्रव्यार्थिक नय और निश्चय नय, पर्यायार्थिक नय और व्यवहार नय समान है। वेदान्त दर्शन में पारमार्थिक, व्यवहारिक और प्रातिभासिक-सत्य के ये तीन रूप माने है। बौद्ध सत्य के दो रूप मानते हैं-पारमार्थिक सत्य और संवृति सत्य। आचार्य महाप्रज्ञ कहते है कि-

'वेदान्त के अनुसार व्यवहारिक सत्य और बौद्ध दर्शन के अनुसार संवृति सत्य अवास्तविक है। जैन दर्शन के अनुसार संवृति सत्य अवास्तविक है। जैन दर्शन के अनुसार व्यवहार नय अवास्तविक नहीं है।' (पृष्ठ 16)

यद्यपि व्यवहार नय भी उतना ही वास्तविक है जितना कि निश्चय नय किन्तु आध्यात्मिक जगत् में इस व्यवहार को झूठा अवश्य कहा गया है। जैन अध्यात्म के सूक्ष्म विश्लेषक आचार्य कुन्दकुन्द समयसार में कहते हैं कि व्यवहार नय अभूतार्थ और शुद्धनय भूतार्थ है। भूतार्थ के आश्रय के आश्रय को प्राप्त जीव निश्चयतः सम्यग्दृष्टि है-

ववहारोऽभूदत्थो भूदत्थो देसिदो दु सुद्धणओ।
भूदत्थमस्सिदो खलु सम्माइट्ठी हवई जीवो।।
(गाथा-11)

व्यवहार नय के आश्रय से ही निश्चय को समझा जाता है किन्तु व्यवहार में उलझने से निश्चय समझ में नहीं आता। व्यवहार को अन्त में छोड़ना पड़ता है, इस अपेक्षा से वह झूठा है तथा हेय है। अतः व्यवहार नय की वास्तविकता तथा अवास्तविकता का कथन भी सापेक्ष ही है।

स्याद्वाद और जगत्

ग्रन्थ के प्रथम भाग के दूसरे अध्याय में स्याद्वाद और जगत् की चर्चा है। जगत् छह द्रव्यों से मिलकर बना है। जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल-ये छह द्रव्य माने गये हैं। इनमें से आरम्भ के पांच तो अस्तिकाय नहीं है किन्तु द्रव्य है। इन छह द्रव्यों के माध्यम से आचार्य महाप्रज्ञ ने जगत् व्यवस्था को समझाया है। इस व्यवस्था को समझाने के लिए उन्होंने अनेकान्त का सहारा लिया है, क्योंकि वस्तु का स्वरूप ही अनेकान्तात्मक है। वे कहते हैं कि-

'इन सहज सम्भूत नियमों को समझने का जो दृष्टिकोण है, वह अनेकान्त है। इन नियमों की जो व्याख्या-पद्धति है, वह स्याद्वाद है। विश्व में इतना विरोध और इतना असामंजस्य है कि अनेकान्त के बिना उसमें अविरोध और सामंजस्य समझा नहीं जा सकता तथा स्याद्वाद के बिना उसकी सम्यक् व्याख्या ही नहीं की जा सकती।' (पृष्ठ 20)

पाञ्चास्तिकाय की निरपेक्षता

सापेक्षता और निरपेक्षता दोनों ही महत्वपूर्ण है। पांच अस्तिकायों का जो स्वरूप है वह निरपेक्ष सत्य है। स्याद्वाद के विषय में कई दार्शनिकों को भ्रम है। आचार्य महाप्रज्ञ इसी बात को कहते हुए लिखते हैं कि-

'कुछ समालोचकों ने लिखा है कि स्याद्वाद हमें पूर्ण या निरपेक्ष सत्य तक नहीं ले जाता, वह पूर्ण सत्य की यात्रा का मध्यवर्ती विश्राम-गृह है। किन्तु इस समालोचना में तथ्य नहीं है। स्याद्वाद हमें पूर्ण या निरपेक्ष सत्य तक ले जाता है। उनके अनुसार पञ्चास्तिकाय जगत् पूर्ण या निरपेक्ष सत्य है। पांचों अस्तिकायों के अपने-अपने असाधारण गुण है और उन्हीं के कारण उनकी स्वतन्त्र सत्ता है। इनके अस्तित्व, गुण और कार्य की व्याख्या सापेक्ष दृष्टि के बिना नहीं की जा सकती।' (पृष्ठ 31)

डॉ. राधाकृष्णन ने अपनी पुस्तक भारतीय दर्शन में स्याद्वाद के बारे में लिखा है-

'स्याद्वाद हमें अर्ध सत्यों के पास लाकर पटक देता है। स्याद्वाद से हम पूर्ण सत्य नहीं जान सकते, आंशिक सत्य को ही जान सकते है।' (भारतीय दर्शन-11/पृष्ठ 47-49)

इस प्रकार कई दार्शनिकों को स्याद्वाद के संदर्भ में भ्रम रहा है किन्तु कई दार्शनिक ऐसे भी हुए जिन्होंने स्याद्वाद के संदर्भ में भ्रम का निराकरण किया। महामहोपाध्याय डॉ. गंगानाथ झा ने लिखा है-

'जब से मैंने शंकराचार्य द्वारा जैन सिद्धान्त का खण्डन पढ़ा है तब से मुझे विश्वास हुआ है कि इस स्याद्वाद सिद्धान्त में बहुत कुछ है जिसे वेदान्त के आचार्यों ने नहीं समझा।' (स्याद्वाद-पृष्ठ 248)

काशी हिन्दु विश्वविद्यालय के पूर्व दर्शन विभागाध्यक्ष स्व. प्रो. फणिभूषण ने लिखा है-

'जैन दर्शन के स्याद्वाद सिद्धान्त को जितना गलत समझा गया है उतना किसी अन्य सिद्धान्त को नहीं। यहां तक कि शंकराचार्य भी इस दोष से मुक्त नहीं है। उन्होंने भी इस सिद्धान्त के प्रति अन्याय किया है। यह बात अल्पज्ञ पुरुषों के लिए अवश्य क्षम्य हो सकती थी, किन्तु यदि मुझे कहने का अधिकार है तो मैं भारत के इस महान् विद्वान् के लिए तो अक्षम्य ही कहूंगा। यद्यपि मैं इस महर्षि को अतीव आदर की दृष्टि से देखता हूं। ऐसा जान पड़ता है कि उन्होंने इस धर्म के दर्शन शास्त्र के मूल ग्रन्थों का अध्ययन करने की परवाह नहीं की।' (स्याद्वाद-पृष्ठ २४६)

यह सच है कि जैन दर्शन के मूल सिद्धान्त अनेकान्त तथा स्याद्वाद को समझने का पहले इतना प्रयास ही नहीं किया गया जितना आज किया जा रहा है। जैसे-जैसे इस क्षेत्र में लोग अध्ययन कर रहे हैं वैसे-वैसे इन विषयों के संबंध में अछूते संदर्भ भी उभर कर सामने आ रहे हैं।

जगत् की व्यवस्था को समझाने के लिए आचार्य महाप्रज्ञ ने नयवाद का सहारा भी लिया है। इस अध्याय के उत्तरार्द्ध में द्रव्यार्थिकनय, पर्यायार्थिक नय तथा नैगमादि सप्तनयों के आधार पर षड्द्रव्यात्मक विश्व का निरूपण किया है।

❑

समग्र व्यक्तित्व विकास

- मुनि धर्मेश

आज पर्सनलिटी शब्द बहुत प्रचलित है। यह आज के युवा मानस का प्रिय शब्द है। प्रत्येक युवक चाहता है कि उसकी पर्सनलिटी अच्छी बने, आकर्षक बने। यह आज की युवा पीढ़ी की चिन्ता है। पर्सनलिटी का सामान्यतया अर्थ लिया जाता है-व्यक्तित्व का बाह्य रूप। व्यक्ति की वेश-भूषा, शारीरिक गठन व बाह्य सौन्दर्य आदि। यह बाह्य रूप व्यक्तित्व का अंशमात्र है। सर्वांगीण व्यक्तित्व तब निखरता है जब उसके सारे आंतरिक आयाम और बाह्य पक्ष उज्ज्वल बनते हैं, उनमें निरन्तर निखार आता है और सभी पक्षों का संतुलित विकास होता है।

शारीरिक विकास

हमारे व्यक्तित्व के अनेक आयाम है-शारीरिक, बौद्धिक, मानसिक, सामाजिक, भावनात्मक व आध्यात्मिक। सामान्यतया युवकों का ध्यान शारीरिक आयाम व बाह्य रूप ही आकर्षण का केन्द्र होता है। शारीरिक विकास के लिए व्यक्ति खेलकूद, व्यायाम, योगासन आदि को अपनाता है। यथोचित शारीरिक पक्ष को पुष्ट करता है, परन्तु व्यक्तित्व के समग्र विकास के लिए सभी पक्षों पर ध्यान देना आवश्यक है।

बौद्धिक विकास

व्यक्ति के बौद्धिक विकास के लिए आज की शिक्षा पद्धति पूरी तरह लगी हुई है। वर्तमान शिक्षा पद्धति बौद्धिक विकास के लिए अनेक विषयों से व्यक्ति को परिचित कराती है। गणित, विज्ञान आदि अनेक विषय हमारे समझने की शक्ति, तार्किक शक्ति, चिन्तन शक्ति को विकसित करते हैं, किन्तु इनसे सम्पूर्ण मानसिक शक्तियों का विकास नहीं हो पाता है।

मानसिक विकास

व्यक्तित्व के मानसिक पक्ष का तात्पर्य है कि व्यक्ति में मानसिक एकाग्रता, मनोबल, मानसिक संतुलन व धैर्य कितना विकसित है। आज का युवा वर्ग व्यक्तित्व के इस पक्ष से अपरिचित है। यह जीवन का ऐसा पक्ष है जो हमारी सफलता का बहुत बड़ा आधार है पर आज हमारी शिक्षा प्रणाली इस कमी को पूरा करने में समर्थ नहीं है। अतः पूज्य गुरुदेव आचार्यश्री महाप्रज्ञजी ने शिक्षा जगत् के सामने जीवन विज्ञान का विकल्प प्रस्तुत किया है। यह जीवन विज्ञान मानसिक विकास और भावात्मक विकास की कमी को पूरा करता है।

भावनात्मक विकास

भावात्मक पक्ष व्यक्तित्व का सबसे प्रबल व ठोस पक्ष है पर आज की युवा पीढ़ी सबसे अधिक इसी से वंचित है। भावात्मक पक्ष के विकास का तात्पर्य है कि व्यक्ति अपने नकारात्मक भावों का परिष्कार कर सके जिससे उसमें सकारात्मक भावों का विकास हो। मुख्य नकारात्मक भाव हैं-क्रोध, अहंकार, लालच, कुटिलता, भय, वासना आदि। इनके परिष्कार द्वारा करुणा, विनम्रता, सरलता, संयम, निर्भयता, पवित्रता आदि सकारात्मक भावों का विकास हो।

कुछ दिनों पूर्व एक युवक आया। उसने कहा 'मुझे छोटी-छोटी बातों पर बहुत जल्दी आक्रोश आ जाता है। मैं उस क्रोधावस्था में बहुत कुछ कह देता हूं, बाद में क्रोध शान्त होने पर मुझे बहुत दुःख होता है। अनेक बार स्थिति बहुत जटिल हो जाती है। स्थिति बिगड़ जाती है। मुझे क्या करना चाहिए?' वस्तुतः हम सब क्रोध के दुष्परिणामों से परिचित है। अतः सहिष्णुता, मृदुता, विनम्रता, सरलता आदि सकारात्मक भावों का मूल्यांकन करें। ये भाव हमारे व्यक्तित्व को ऊंचा उठाने में, शान्ति की अनुभूति में सहायक होते है। इन भावों के अभाव में ऊंचे से ऊंचा ओहदा, बड़ी से बड़ी सफलता, सारी सुख-सुविधाएं एवं समृद्धि व्यक्ति को शान्ति नहीं दे सकती। अपेक्षा है कि हम इस भावात्मक पक्ष पर ध्यान केन्द्रित करें।

सामाजिक विकास

व्यक्तित्व का सामाजिक पक्ष उन गुणों से संबंधित है जिससे व्यक्ति परिवार व समाज में तालमेल बिठा सके, सामंजस्य स्थापित कर सके, विभिन्न परिवेश व व्यक्तियों से समायोजन कर सके, समय आने पर समूह का नेतृत्व भी कर सके। इस पक्ष का विकास सामाजिक स्वास्थ्य के लिए अत्यन्त आवश्यक है। इसके अभाव में घर-परिवार नरक बन जाता है और समाज रुग्ण।

आध्यात्मिक विकास

आध्यात्मिक पक्ष का तात्पर्य है कि व्यक्ति अपने आपको पहचाने, अपने आप से परिचित हो। व्यक्ति अपने मूल स्वरूप, शुद्ध चैतन्य से परिचित हो और वास्तविक गुण, योग्यता, अर्हता से भी परिचित हो। इसके साथ-साथ वह अपनी दुर्बलता, कमी या दोषों को भी पहचाने। आध्यात्मिक पक्ष व्यक्तित्व का आधारभूत पक्ष है। व्यक्ति जब इस पक्ष पर ध्यान देता है तो उससे उसके सभी पक्ष विकसित होने लगते है। जब व्यक्ति अपने गुणों को पहचान लेता है तब उसमें शक्ति के सही दिशा में नियोजन की संभावनाएं बनती है। जब व्यक्ति अपने दोषों को देखता है तो उससे बचने की योग्यता विकसित होती है। जो व्यक्ति अपने गुण-दोषों को देखता है वह दोषों से खिन्न नहीं होता क्योंकि वह गुणों को भी देखता है। इसी प्रकार जो गुणों को देखता है वह अहं से अभिभूत नहीं होता क्योंकि वह दोषों को भी देखता है। स्वयं के गुण-दोषों की समीक्षा या प्रेक्षा जीवन में समता और संतुलन का महत्वपूर्ण सोपान है।

व्यक्तित्व विकास के सोपान

भगवान ऋषभ समवसरण में विराजमान थे। उनके पास उनके पुत्र आये। अपनी समस्या रखी। भगवन्! भरत हमारी स्वाधीनता और स्वतंत्रता में हस्तक्षेप कर रहे हैं, आपके दिये हुए राज्य को छीन रहे है। भगवान् ने समाधान के स्वरों में कहा - 'संबुज्झह किं न बुज्झह सम्बोहि पेच्च दुल्लहा।' जागो! क्यों नहीं जाग रहे हो! अपने भीतर के उस असीम व शाश्वत राज्य के प्रति जागो! आगे बढ़ो, अपने अन्तर्राज्य को प्राप्त करो। अपने अस्तित्व आत्मा को उपलब्ध करो। यह अवसर दुर्लभ है। वे जाग गये। समाधान को पा लिया। हमेशा के लिए स्वतंत्र हो गये, मुक्त हो गये।

निराशा और हताशा व्यक्तित्व विकास की गति में अवरोध है। निराशा कब आती है?जब व्यक्ति केवल अंधकार पक्ष को ही देखता है। प्रकाश को देख ही नहीं पाता, तब निराशा आती है। महापुरुषों द्वारा दिखाई गई प्रकाश की मात्र एक रश्मि व्यक्ति में आशा का संचार कर देती है। क्या कोई ऐसा व्यक्ति है जिसमें प्रकाश न हो?क्या कोई ऐसा व्यक्ति है जिसमें केवल अंधकार ही हो?क्या

कोई ऐसा व्यक्ति है जिसमें कोई अच्छाई न हो?कोई नहीं। प्रश्न इतना ही है कि हम किसके प्रति जागरूक है। संसार में ऐसा कोई व्यक्ति नहीं है जिसमें गुण और अवगुण दोनों न हो। बस अपेक्षा इतनी है कि हम अपने गुणों के प्रति जाग जाएं। हमारी शक्ति व समय का अधिक से अधिक उपयोग गुणों के विकास में करें।

व्यक्तित्व की भूमिकाएं एवं सोपान

जागरण व्यक्तित्व विकास का प्रथम सोपान है। गुण और अवगुण के प्रति जागृति के अनुसार व्यक्तित्व की चार भूमिकाएं सामने आती है-

1. गुणों के प्रति सुप्त तथा अवगुणों के प्रति भी सुप्त-अविकसित व्यक्तित्व।

2. गुणों के प्रति सुप्त तथा अवगुणों के प्रति जागृत-अधोगति व्यक्तित्व।

3. गुणों के प्रति जागृत तथा अवगुणों के प्रति सुप्त एवं लापरवाह-विकासशील किन्तु बुराई ग्रस्त, अन्ततः पतनमुखी व्यक्तित्व।

4. गुणों के प्रति जागरूक तथा अवगुणों के प्रति भी जागरूक-विकासशील व्यक्तित्व।

सफल व्यक्तित्व के निर्माण के लिए चतुर्थ भूमिका को स्वीकार करना होगा। गुणों के प्रति जागरूक होकर उसमें समय व शक्ति का समुचित नियोजन करना होगा। अवगुणों में नियोजित समय व शक्ति को हटाना होगा। चतुर्थ भूमिका पर आरोहण के पांच सोपान है-

1. स्वयं की पहचान-अपनी दुर्बलताओं और विशेषताओं का भान करना।

2. अपनी विशेषताओं का विकास करना।

3. अपनी दुर्बलताओं को समाप्त करने के लिए अपनी विशेषताओं का कारगर ढंग से उपयोग करना।

4. अपनी क्षमताओं को सही दिशा में नियोजित करना।

5. अपनी क्षमताओं का स्व-पर कल्याण की भावना से अधिकतम उपयोग करना।

स्वयं की पहचान

समस्या यह है कि स्वयं की पहचान कैसे हो?किस प्रकार स्वयं के गुणों और अवगुणों की पहचान करें?किस प्रकार समय और शक्ति का सही नियोजन करें?किस प्रकार अवगुणों को दूर करें?

स्वयं के गुण-अवगुणों की पहचान के लिए अनेक उपाय हो सकते है। उन्हें मुख्य दो भागों में बांट सकते है-

(अ) स्वयं के द्वारा स्वयं का बार-बार अवलोकन करना।

(ब) विश्वस्त, गम्भीर, विशेषज्ञ व्यक्तियों से परामर्श करना।

(अ) स्वयं के द्वारा स्वयं का अवलोकन

आत्म निरीक्षण करना ही प्रेक्षा है। इसकी पूरी पद्धति है। इसमें स्वयं के द्वारा स्वयं का अवलोकन किया जाता है। प्रेक्षाध्यान पद्धति में साधक प्रतिक्रमण योग का अभ्यास करते है। इसके दो रूप है- लिखित और सुबह-सायं मानसिक रूप से।

(i) प्रतिदिन का लेखा जोखा करना व रखना डायरी लेखन है। विश्व की महान् विभूतियों में से अनेकों ने डायरी लेखन किया है। वे उनसे लाभान्वित होते रहे है। वे ही नहीं उनसे दूसरे लोग भी अमूल्य प्रेरणाओं को प्राप्त करते है। महात्मा गांधी डायरी लिखते थे। उससे वे स्वयं तो लाभान्वित हुए ही, अन्य हजारों लोग भी लाभान्वित होते रहे है। पिछले पच्चीस वर्षों से मैं यदा कदा डायरी लिखता रहा हूं। इस लेखन के प्रारम्भ में कठिनाइयां आई किन्तु कालान्तर में वे स्वतः समाहित हो गई। इससे मैं बहुत लाभान्वित हुआ और अनुभव भी निरन्तर बढ़ा है। इससे अपने आप को समझने में बहुत अधिक मदद मिली। मेरी डायरी लेखन में इन तथ्यों का समावेश विशेष रूप से हुआ। वे तथ्य है-(1) स्व-विश्लेषण (2) पर-गुण विश्लेषण, (3) स्वतः सुझाव, (4) स्वकथ्य, (5) स्व समीक्षा, (6) घटना के प्रति अपना चिन्तन, (7) किसी एक विषय पर नये-नये प्रयोग, अवलोकन, विश्लेषण, सामान्य नियम का निर्माण व परीक्षण।

उपरोक्त तथ्यों के लेखन व विश्लेषण से स्वयं के गुण दोषों को पहचानने में मदद मिली। इसी के अन्तर्गत दूसरा उपाय है- दैनिक अवलोकन।

(ii) दैनिक मानसिक अवलोकन

यह मानसिक अवलोकन दिन भर में की जाने वाली क्रियाओं का क्रमिक स्मरण है। पुनरावलोकन के अन्तर्गत दिनभर में की गई क्रियाओं का पुनः अवलोकन सोने से पूर्व किया जाता है। पुनरावलोकन से अपनी अच्छाई व बुराई, गुण-दोष, सबल-दुर्बल पक्ष की जानकारी मिलती है। पूर्वावलोकन प्रातः उठने के बाद दिनभर में की जाने वाली क्रियाओं का पूर्व स्मरण है। इससे उनके प्रति जागरूकता व सतर्कता का संकल्प जागता है।

(ब) विश्वस्त, गंभीर व विशेषज्ञ व्यक्तियों से परामर्श

स्वयं की पहचान का दूसरा उपाय है-विश्वस्त, गंभीर व विशेषज्ञ पुरुषों से अपने बारे में जानना। विश्वस्त व्यक्तियों में अपने माता-पिता तथा परिजन आते है जो सदैव हमारे हित में सोचते है, उनसे भी हम अपने बारे में पता कर सकते है। गुरुजन, अध्यापक, शिक्षक, संत-मुनिगण गंभीर होते है वे दूसरों का, अपने शिष्यों का हित चाहते है। उनसे भी हम अपने बारे में जान सकते है। विशेषज्ञ में उनको ले सकते है जो अपनी विद्या की विशिष्टता द्वारा हमारा मार्गदर्शन कर सकते है। जैसे-मनोवैज्ञानिक अपने ज्ञान तथा उपलब्ध परीक्षणों द्वारा व्यक्ति को स्वयं की विशेषताओं और दुर्बलताओं से परिचित करा कर मार्गदर्शन कर सकते है। इसी प्रकार हस्तरेखा विशेषज्ञ तथा कुण्डली विशेषज्ञ भी व्यक्ति को उसकी विशेषताओं एवं दुर्बलताओं से परिचित कराकर मार्गदर्शन कर सकते है। ❐

With Best Compliments from

सद्भावना

OSWAL
Weldmesh Pvt. Ltd.

SAPPHIRE
Weld & Wire Private Limited

17, Mill Road, Coimbatore - 641 001 Ph. : 0422-2395799/2399799

Works : S.F. No. 259, Thennampalayam, Arasur (Po), Coimbatore - 641 407

E-mail : vinodlunia@gmail.com, oswalweldmesh@gmail.com

प्रेक्षा-दर्शन

मन को शांत करना जरूरी

मन चंचल है, उसे शांत कैसे करें?मन को शांत करने की एक प्रक्रिया है-मिथ्या दृष्टिकोण, अविरति, प्रमाद और कषाय को उपशांत करते जाएं, मन शांत हो जायेगा।
How do we calm our wavering maid? Mind pacifying is a process of continuous removal of distorted views, indulgences, wrath and other passions.

जीवन में शान्ति का महत्व

शक्ति के बिना शान्ति नहीं है। भावनात्मक विकास, मनोबल का विकास और शारीरिक विकास-इस समुच्चय का अर्थ है शान्ति।
There can be no peace without power. In fact, peace implies a holistc development-emotional, mental and physical.

जीभ पर स्थिरता जरूरी

जो व्यक्ति मन को शांत करना चाहता है, विकल्पों को कम करना चाहता है, उसे सबसे पहले ध्यान देना चाहिए जीभ की स्थिरता पर। जिन लोगों ने जीभ को स्थिर करना सीख लिया, मन की चंचलता का प्रश्न उनके लिए समाप्त है। जो जीभ को स्थिर करना नहीं जानते हैं, वे चचंलता को नहीं मिटा पाते।
If you wish to calm you inner agitations, meditate on stilling the tongue. If you have mastered keeping your tongue motionless you have learned to calm your mind.

दूसरों को नीचा न दिखाएं

वास्तव में वह आनन्द मंगलमय होता है जहां अपनी समृद्धि के लिये दूसरों को गरीब न बनाना पड़े। अपने ऐश्वर्य और प्रभुत्व के लिए दूसरों को नीचा न दिखाना पड़े।
The really auspicious state of bliss is one that is not achieved at the cost of other peopl's happiness and prosperity. It is not attained by downgrading others to upgrade yourself.

With Best Compliments from

प्रेक्षाध्यान का प्रयोजन है अतीन्द्रिय चेतना का विकास करना। अतीन्द्रिय चेतना का अनुभव बहुत लोग नहीं करते। उन्हें पता भी नहीं चलता और करने वाला बता भी नहीं सकता कि उसका स्वाद कैसा है? उसका अनुभव कैसा है?

–आचार्य महाप्रज्ञ

सद्भावनाएं

अरविन्द संचेती

अहमदाबाद

प्रेक्षा फाउंडेशन संबद्धता प्राप्त केन्द्र सूची

स्थान का नाम	संयोजक का नाम	सम्पर्क सूत्र
लाडनूं	डा. मिलापकी शर्मा	8233344482
मेहरौली	श्री मुकेश कुमार	9643300655
कोबा	श्री बाबूलाल संखानी	9825033201
कूचबिहार	श्री जयचंद दुगड़	9434213099
राजकोट	श्री चन्द्रकान्त कोटेचा	9824043363
चेन्नई	श्री माणिकचंद रांका	9440205427
नागपुर	श्री आनंदमल सेठिया	9373471831
अम्बावाड़ी	श्री संतोष सुराणा	9426087220
इन्दौर	श्री राजेन्द्र मोदी	9993465883
सूरत	श्री जयन्तीलाल कोठारी	9377555545
विक्रोली	श्री मिश्रीमल चौधरी	9869990868
कांदीवली	श्री पारसमल दुगड़	9004937723
कांदीवली	श्रीमती निर्मला दुगड़	9004798179
दामोदरवाड़ी, कांदीवली	श्री पारसमल दुगड़	9004937723
अशोकनगर कांदीवली	श्री पारसमल दुगड़	9004937723
गौहाटी	श्री निर्मल चौरड़िया	9435042723
रायपुर	श्री सुरेन्द्र ओसवाल	9425285121
चेन्नई	श्रीमती प्रियंका बोहरा	9840845337
बैंगलोर	श्रीमती पुष्पा गन्ना	9686366250
गंगाशहर	श्री जैन लूणकरण छाजेड़	9887914000
मणिनगर, कांकरिया	श्री उमेद कोचर	9426412624

ध्यान है संकल्प विकल्प का विराम

❁ साध्वी राजीमती

ध्यान की अब तक अनेक परिभाषाएं हो चुकी हैं। उनमें एक है निर्विचार होना। निर्विचार का मतलब है विचार रहित क्षण में होना। यह अनुभव किया जा सकता है। एक विचार आता है, उसके कुछ क्षण बाद दूसरा विचार आता है। इन दोनों में अंतराल होता है, उस क्षण निर्विचार स्थिति में हम होते हैं।

धीरे-धीरे विचार कुछ कम या शून्य हो जाते हैं।

निर्विचार होने के लिए पहले विचार को ही देखना होगा। जब फासले

को देखने का अभ्यास परिपक्व हो जाएगा तब विचार प्रेक्षा स्वतः निर्विचार-प्रेक्षा बन जाएगी। यदि यह संभव नहीं हो सके तो नासाग्र प्रेक्षा का सहारा लिया जा सकता है।

निर्विचार होने की यह प्रक्रिया किसी भी मुद्रा में बैठकर प्रारम्भ कर सकते हैं। सागर में उठती लहरों की तरह केवल विचार-प्रवाह को देखते रहना है। न किसी विचार को रोकना है और न किसी विचार का विश्लेषण करना है। किसी का स्वीकार और किसी का अस्वीकार जब तक रहेगा। तब तक द्वन्द्व रहेगा।

हम जिस विचार से दूर हटने की चेष्टा करते हैं, विचार हटता नहीं बल्कि अधिक मजबूती से सामने खड़ा हो जाता है। द्रष्टा बनकर शांत-भाव से देखते रहें।

प्रश्न उभरता है कि मन के पार जाने के लिए किसे आलम्बन बनाएं?जबकि चित्त तक सीधे नहीं जा सकते। अतः प्रारम्भ में मन का ही सहारा लें ताकि मन मौन हो जाए। यद्यपि यह असंभव जैसा लगता है, पर प्रतिदिन के अभ्यास से अवश्य संभव हो जाता है। ❑

With Best Compliments from

VAISHNODEVI Lush Green

BUILDERS | DEVELOPERS | PROMOTERS

Regd. Office : Vaishnodevi Lush Green Pvt. Ltd.

459, 4th Floor, 12th Main, M. C. Layout Near Vijaynagar Post Office, Bangalore-560040 (Karnataka)

Ph. : 23146429, M : 9620799999, E-mail : vimalkataria9@gmail.com

Vimal, Chirag, Yash Kataria

Bemali-Bangalore

मुद्रा प्रयोग के नियम-उपनियम

● डॉ. साध्वी सौम्यगुणाश्री
(खरतरगच्छ)

यहाँ मुद्रा का तात्पर्य हाथ की विभिन्न आकृतियों से है क्योंकि प्रायः मुद्राएँ हाथों द्वारा ही की जाती है। कहा जाता है जैसे ब्रह्माण्ड पाँच तत्त्वों से निर्मित है वैसे ही प्राणवान शरीर पाँच तत्त्वों से बना हुआ है। इन पाँच महाभूत तत्त्वों में अग्नि, वायु, आकाश, पृथ्वी और जल की गणना होती है। यौगिक पुरुषों के अनुसार हमारी पाँचों अंगुलियाँ इन तत्त्वों का प्रतिनिधित्व करती है।

स्पष्ट है कि हाथ की अंगुलियों से की जाने वाली मुद्राओं के माध्यम से शरीर के आवश्यक तत्त्वों का प्रभाव घटा-बढ़ा सकते है। जिससे शरीर में इन तत्त्वों का संतुलन बना रहता है तथा शरीर के साथ-साथ बुद्धि, मन एवं चेतना के दोषों का परिहार और गुणों का उत्सर्जन होता है।

अंगुलियों के नाम	तत्त्वों के नाम
अंगुठा (Thumb)	अग्नि तत्त्व (Fire-sun)
तर्जनी (Index)	वायु तत्त्व (Air-wind)
मध्यमा (Middle)	आकाश तत्त्व (Ether-space)
अनामिका (Ring)	पृथ्वी तत्त्व (Earth)
कनिष्ठिका (Little)	जल तत्त्व (Water)

मुद्रा की आवश्यक जानकारी

1. सामान्यतया मनुष्य पाँच तत्त्वों से स्वस्थ रह सकता है। ऋषि-महर्षियों द्वारा निर्दिष्ट एवं अनुभवियों द्वारा उपदर्शित मुद्राएँ बौद्धिक, मानसिक एवं दैहिक संतुलन की अपेक्षा से है अतः इन मुद्राओं का प्रयोग करने से पूर्व इसके प्रति दृढ़ विश्वास एवं अटूट श्रद्धा अवश्य होनी चाहिए।

2. शारीरिक संरचना के अनुसार अंगूठे के अग्रभाग पर दूसरी अंगुली के अग्रभाग को दबाने से, उस अंगुली का जो तत्त्व है वह बढ़ जाता है तथा अंगुली के अग्रभाग के मूल पर लगने/दबाने से उस अंगुली को जो तत्त्व है उसमें कमी आ जाती है।

3. मुद्रा करते समय अंगुली और अंगूठे का स्पर्श सहज होना चाहिए। अंगूठे से अंगुली को सहज दबाव देना चाहिए और शेष अंगुलियाँ अमुक-अमुक मुद्रा के नियमानुसार सीधी या एक-दूसरे से सटी रहनी चाहिए। हथेली का भाग मुद्रा नियम के अनुरूप रहना चाहिए। यदि अंगुलियां पहली बार में सही रूप में सीधी-टेढ़ी या सटी हुई न रह पायें तो आरामपूर्वक जितना बन सके, मुद्रा को यथारूप बनाने की कोशिश करें। तदनन्तर अभ्यास द्वारा धीरे-धीरे सही मुद्रा भी बन जाती है।

4. मुद्रा प्रयोग दोनों हाथों से करें, क्योंकि दायें हाथ की मुद्रा करने से शरीर के बाएँ भाग पर असर होता है और बाएँ हाथ की मुद्रा करने से शरीर के दायें भाग पर असर होता है। इस तरह शरीर और मन हर तरह से संतुलित रहता है।

5. हर कोई स्त्री-पुरुष, बालक-वृद्ध, रोगी-निरोगी, मुद्राओं का प्रयोग कर सकता है।

6. प्रत्येक व्यक्ति के स्वयं के लिए जो भी मुद्रा उपयोगी हो, उस मुद्रा का प्रयोग नियमतः 48 मिनट तक करना चाहिए; अभ्यास के द्वारा समय मर्यादा बढ़ाई जा सकती है। यदि कोई मुद्रा लम्बे समय तक एक साथ न हो सके तो सुबह-शाम 15–15 मिनट करके 30 मिनट तक तो अवश्य करनी चाहिए।

7. भोजन के तुरन्त बाद 30 मिनट तक किसी भी मुद्रा को नहीं करें। केवल गैस या अफरा दूर करने के लिए वायु मुद्रा की जा सकती है।

8. प्राण मुद्रा, अपान मुद्रा, पृथ्वी मुद्रा और ज्ञान मुद्रा को साधक इच्छानुसार दीर्घ समय तक कर सकते है, किन्तु वायु मुद्रा, शून्य मुद्रा, लिंग मुद्रा वगैरह अन्य मुद्राएँ व्याधि दूर न हो तब तक ही करनी चाहिए।

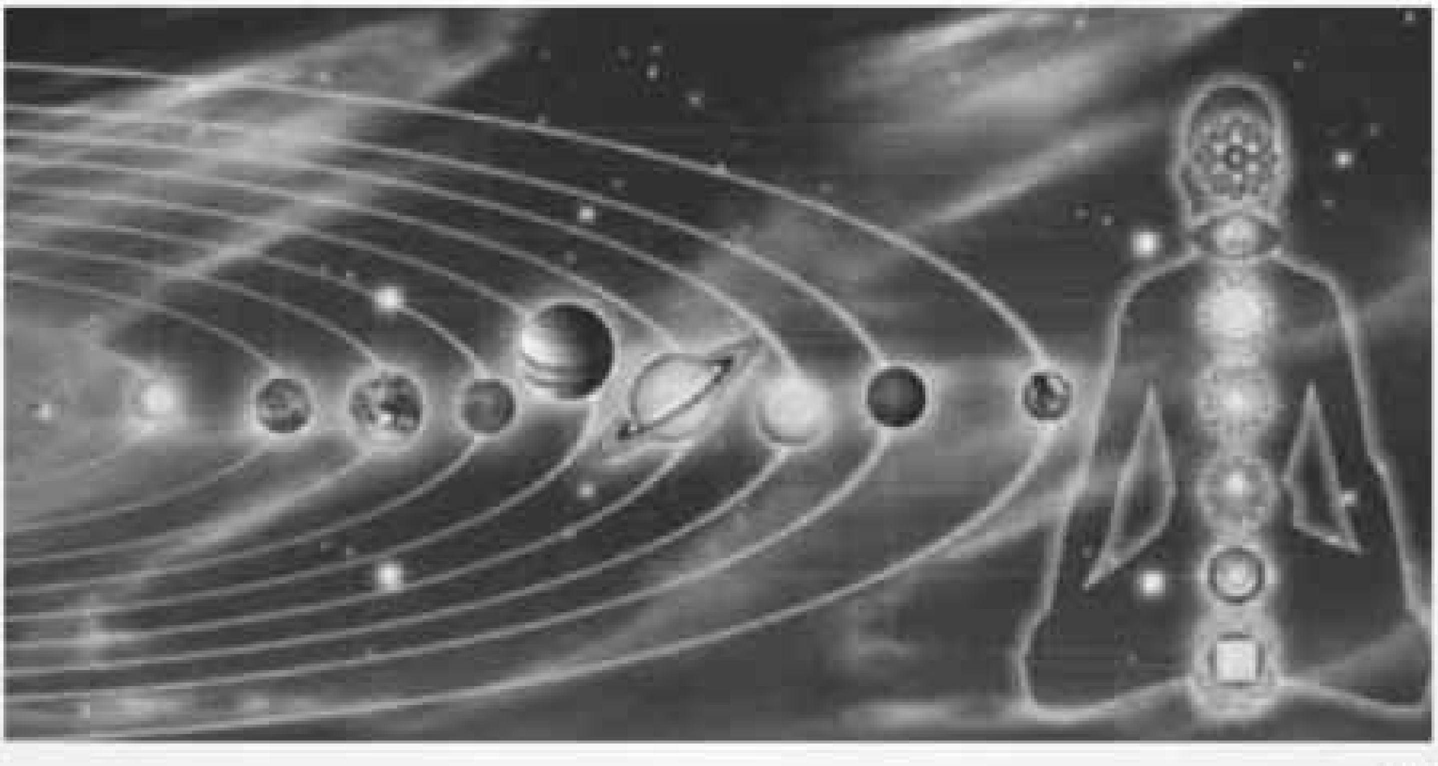

9. कोई अन्य चिकित्सा या औषधि का सेवन कर रहे हों, तो उस समय भी मुद्रा चिकित्सा का प्रयोग कर सकते है।

10. मुद्राओं में अपानवायु रोग मुक्ति के लिए श्रेष्ठकारी है। इस मुद्रा को हृदय पर स्पर्शित करते हुए किसी भी रोग में तत्काल फायदा होता है इसलिए डॉक्टरों/वैद्यों के पास जाने से पूर्व रोगी को यह मुद्रा अवश्य कर लेनी चाहिए। उसे तात्कालिक राहत का अहसास होता है।

11. शरीर, मन और चेतना को स्वस्थ रखने के लिए प्राणवायु एवं अपानवायु को संतुलित रखना अत्यन्त जरूरी है। यह संतुलन प्राण मुद्रा एवं अपानमुद्रा के प्रयोग से ही संभव है। इन मुद्राओं के प्रयोग से नाड़ी शुद्धि और शरीर रोग रहित बनता है इसलिए ये मुद्राएँ निश्चित करनी चाहिए।

12. अनेकों मुद्राएँ चैतसिक, मानसिक, आध्यात्मिक और भावनात्मक विकास के उद्देश्य से की जाती है। इन मुद्राओं को निर्धारित दिशा, आसन, मंत्र एवं समयानुसार करने पर अधिक लाभकारी होती है।

13. मुद्रा प्रयोग से पंच तत्वों में परिवर्तन, विघटन, प्रत्यावर्तन, अभिवर्धन होता रहता है परिणामतः तत्वों में सामंजस्य बना रहता है।

14. कुछ मुद्राएँ निश्चित यौगिक आसन में बैठकर की जाती है। इनमें हठयोग सम्बन्धी मुद्राएँ एवं पूजोपासना सम्बन्धी मुद्राएँ मुख्य है।

रोग शमन में उपयोगी योग तत्व मुद्रा विज्ञान की बहुत सी मुद्राएँ चलते-फिरते, सोते-जागते किसी भी स्थिति में की जा सकती है।

अधिकांश मुद्राओं का प्रयोग आवश्यक होने पर 45 से 48 मिनट करना चाहिए। यदि किसी मुद्रा को एक साथ न कर पायें तो 15–15 मिनट या 16–16 मिनट में विभाजित कर तीन बार में पूर्ण कर सकते हैं।

15. मुद्राएँ भिन्न-भिन्न हेतुओं से विभिन्न आसनों में की जाती है। हठयोग की मुद्राएँ बैठकर की जाती है। किन्तु कुछ मुद्राओं में लेटना भी पड़ता है। हठयोग की मुद्राओं को नियमित रूप से कम से कम एक मिनट से तीस मिनट तक करने सकते है।

नाट्य परम्परा की मुद्राएँ अधिकांशतः भाव प्रदर्शन के उद्देश्य से प्रयुक्त होती है अतः विधि नियम के अनुसार बैठकर या खड़े होकर की जाती है। इनमें समय की कोई निश्चित अवधि नहीं है।

योग तत्व मुद्रा विज्ञान की मुद्राएं अनन्त है। इस श्रेणी की मुद्राएं प्रायः हाथ की पांच अंगुलियों से ही बनती है किन्तु कुछ मुद्राओं में दोनों हाथों के साथ-साथ सम्पूर्ण शरीर का प्रयोग भी किया जाता है। जैसे ज्ञान मुद्रा, वैराग्य मुद्रा, अभय मुद्रा आदि में समग्र शरीर का उपयोग होता है। साधारण ज्ञान मुद्रा चलते-फिरते, उठते-बैठते अथवा विभिन्न कार्य करते हुए एक हाथ से या दोनों हाथों से भी की जा सकती है किन्तु मुख्य ज्ञान मुद्रा किसी आसन में बैठकर ही की जाती है।

रोग निवारण मुद्राएं एक साथ दो, तीन, चार भी लगातार की जा सकती है। चाहें तो हर सैकेण्ड के बाद मुद्रा परिवर्तित कर सकते है। आवश्यकता होने पर बार-बार बदलते हुए कुछ अधिक समय भी मुद्राएं कर सकते है।

रोग दूर करने वाली साधारण मुद्राओं में किसी मुद्रा को पहले तथा बाद में करने का कोई नियम नहीं है। जिस मुद्रा की आवश्यकता पहले समझें उसे इच्छानुसार कर सकते है।

हिन्दू उपासना में गायत्री मुद्राओं का प्रमुख स्थान माना गया है। इन मुद्राओं को त्रिकाल सन्ध्या में करने का प्रावधान है। इन्हें धीरे-धीरे भी कर सकते है और शीघ्रता के साथ भी इनका प्रयोग किया जा सकता है।

मुद्रा अभ्यासी साधकों के लिए आवश्यक है कि वे साधना काल के दौरान आत्मा, मन और शरीर से पूरी तरह शान्त और पवित्र हों। ऐसी स्थिति में मुद्राओं का पूर्ण लाभ प्राप्त होता है।

मुद्राएं करते समय अतिरिक्त अन्य अंगुलियों को सीधा रखना चाहिए। मुद्राएं उचित प्रकार से करने पर ही अपना प्रभाव दिखाती है।

मुद्रा चिकित्सा को अन्य चिकित्सा प्रणालियों जैसे ऐलोपैथी या होम्योपैथी के साथ भी किया जा सकता है। इससे अन्य चिकित्सा प्रणालियों में किसी भी प्रकार से बाधा नहीं पहुंचती वरन् लाभ ही होता है।

प्रायः मुद्राओं का प्रभाव अतिशीघ्र होता है परन्तु पुराने रोगों के निवारण हेतु मुद्राएं लम्बे समय तक करनी चाहिए।

किसी भी क्रिया को करने से पूर्व उसके लाभ-हानि, विधि-अविधि के विषय में सम्यक जानकारी हो तो उसका प्रयोग शीघ्र परिणामी होता है। मुद्रा साधना यद्यपि एक शारीरिक क्रिया है परन्तु इसका प्रभाव साधक मनुष्य की सूक्ष्म तंत्र प्रणालियों पर भी देखा जाता है। यही तंत्र मनुष्य के स्वभाव, आचरण एवं भावगत को संतुलित रखते हैं। इस अध्याय के माध्यम से साधक को मुद्रा साधना के उन्हीं पक्षों से परिचित करवाते हुए मुद्रा प्रयोग में अधिक जागरूक एवं सक्रिय बनाने का प्रयास किया है। इससे साधक स्वयं अपने रोगों के लक्षण जानकर किस चक्र या ग्रन्थि को नियोजित करना है यह जान सकेगा एवं तत्सम्बन्धी मुद्राओं सम्यक विधिपूर्वक उपयोग करके उनके सुपरिणाम प्राप्त कर सकेगा। ❐

With Best Compliments from

किसका है ? यह मत देखो। क्या है ? इस पर ध्यान दो।
अच्छा विचार व अच्छी कृति, फिर वह किसी की भी क्यों न हो, स्वीकार कर लो।
-आचार्य महाश्रमण

श्रद्धावनत

पुखराज बड़ोला
मुख्य न्यासी, जैन विश्व भारती

जितेन्द्र मुकेश श्रेयांस बड़ोला
ब्यावर - चेन्नई

HAPPINESS THROUGH CONTEMPLATION

- Acharya Mahapragya

There are two paths in life-that of materialism and that of spiritualism. We have to understand spirituality from different perspective. Unless a man develop the right view towards material objects he cannot be truly spiritual.

MATERIALISM

Man has an unfortunate tendency to treat material objects as permanent. He may profess to consider them as being impermanent, but in deed, in practice and in his innermost feeling, he deals with them as if they were everlasting. This is the formost reason why the loss of any material object results in sorrow. Sorrow occurs because of attachement to material things.

As long as this attitude towards material objects remains, man cannot invoke his spiritual consciousness; he will continue to seek refuge in materialism. This shows that he is a captive of the material world. Until and unless this illusion is completely destroyed, spirituality cannot evolve.

Unfortunately, a man identifies himself totally with his body. Spirituality cannot exist until and unless matter and consciousness, that is, body and soul, are seen as different entities. The belief that 'I am different from my body' and that 'I am solitary' guides us towards spirituality.

There are four steps to realizing spirituality :-

- Contemplation of impermanence.
- Contemplation of the state of 'asharana'-a state in which a person does not seek shelter.
- Contemplation of the separation of self from the material body.
- Contemplation of solitariness.

He, whose consciousness of impermanence, of asharana, of separation from the material body and of solitariness is awakened, become spiritual. By practising the above fourfold process, he can realize his true self.

CONTEMPLATION OF IMPERMANENCE

The practice of contemplating the impermance of matter is the first step towards the realiztion of spirituality. As this practice develops, the happiness and sorrow associated with objects starts dissipanting. According to our mental and emotional states, an undesired object gives us sorrow while a desired object gives us happiness. But, in the foremost state of impermanence, there is no sorrow. When the truth about acquisition and separation is completely understood, and the consciousness awakens with full realization, then there is no fear of old age and no fear of death. Only a truly spiritual person can overcome this suffering.

Merely being a leader or a preacher cannot help transcend this suffering. Only a person who lives spiritually can overcome it and enjoy continuous and infinite bliss. The one who does not realize this bliss at present can never achieve. it later. Moksha is obviously achieved by one who experiences emancipation at the present moment. The practice and contemplation of impermanence is imperative for getting elevated to that realization. The practice should be so rigorous that realization actually occurs. Only that philosophy which is actually lived out during realizations is considered perfect. The mere chanting of mantras will not help until it is actually realized through practice. Similarly, realizing the impermanence of matter is necessary : it is the first step towards spirituality. A spiritual person may be defined as one who has witnessed impermanence.

CONTEMPLATION OF THE STATE OF ASHARANA

The second element is asharana. King shrenik, on seeing the young Anathi Muni, asked him, 'How did you

With Best Compliments from

दूसरों को उपदेश देने से पूर्व जरा यह भी आत्मालोचन करें कि उपदेश का कितना अंश तुम्हारे जीवन में है ?

-आचार्य महाश्रमण

पूज्य पिताजी स्व. रणजीतसिंह जी बैद की पुण्य स्मृति में

प्रकाश प्रमोद बैद

लाडनूं-कोलकाता

become an ascetic at such a young age? The ascetic repled, 'I was insecure and did not find any refuge.' Shrenik said, 'Well, I will provide you with shelter. Come. Live with me in my place.' The ascetic said, 'O king! You yourself are insecure and still you wish to provide me with shelter? How can you become my refuge and give me true shelter? The king was surprised and asked, 'How am I insecure? If I am the ruler of such a big empire how can I be insecure?' The ascetic said, 'O king! I was the son of a wealthy father and faced no lack of any kind. Once, I had an unbearable pain in my eye and nobody was there to share the pain. That helpless state of sickness and intense pain awakened the consciousness of asharana in me. I realized that there is no one in the world who can provide me with shelter, I am born without it. The external material world cannot provide relief and shelter. Therefore, I sought shelter within myself. With determination, the pain disappeared. The consciousness of asharana guided me towards the path of seeking true shelter and I became an ascetic. I no longer crave for anybody's shelter.'

A spiritual person is one whose consciousness of asharana is awakened.

There are two kind of persons-external seekers and internal seekers. A spiritual person is an internal seeker. An external seeker is materialistic because he is always inclined to seek externally. He searches for the solution to everything in the material world. He always yearns for objects. It is natural for anyone to move in the direction of the things towards which he in inclined. If his tendency is to seek withing, them, he will surely seek the solution to everything in his spirit. Seeking internally is to seek inside the soul. This is a very simple definition of spirituality. In the state of consciousness of impermanence, any external attachment or delusion will be resolved automatically.

CONTEMPLATION OF THE SEPARATION OF SELF FROM THE MATERIAL BODY

Man has a deep attachment to his physical body. He spends a lot of time caring for it. His delusion is so profound and deep that he has accepted the body and the soul to be one and the same. His body is his only personality, and because of that, he cannot materialize his spirituality. One should practise the philosophy of contemplating over the separation of soul from the body and arrive at the knowledge that one's existence is separate from the body. When the knowledge of separation of soul from the body awakens, then spirituality starts taking root. Man accepts three traits of his personality-memory, inmagination and thinking power. All these are mechanical. none of them is related to the soul. Sensation is related to the soul, it is not

जब तक अज्ञानता की अनुभूति नहीं होगी,
तब तक व्यक्ति ज्ञान को प्राप्त नहीं कर सकता।।
- आचार्यश्री महाश्रमण

भैंरूलाल चोपड़ा
अहमदाबाद

mechanical. Spirituality commences only when the consciousness of separation from the body awakens.

CONTEMPLATION OF SOLITARINESS

It is ironical that the more man is attached to material possessions, the more he considers himself capable, thinking that possession is strength. He does not want to be alone; that is why he keeps on complaining. 'I have done so much for my family but they have all deceived me. I have helped and cooperated with them in all circumstances but, today, they have become my worst enemies.' I really pity such people. Man experiences misery and restlessness only when he is attached and does not know the art of living by himself. No matter how kind we may be to others, how much we may help others, we should never forget that, eventually, we are alone. A person associated with this ultimate truth never experiences sorrow or misery.

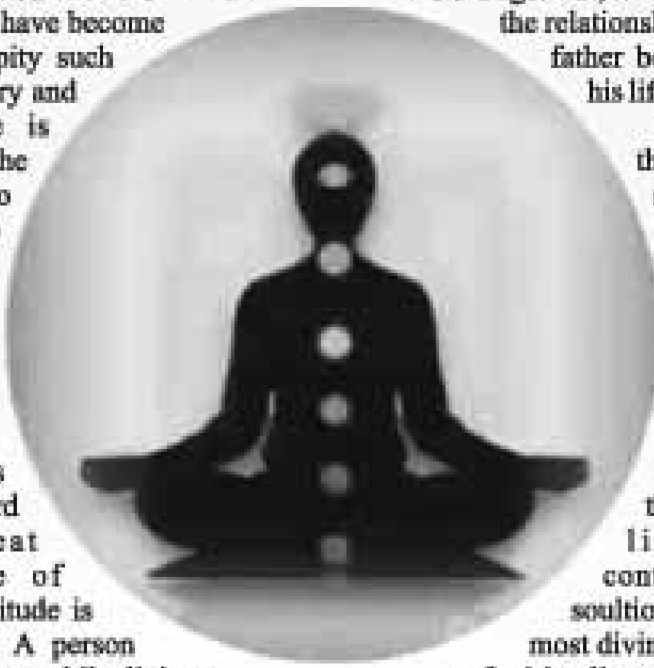

The last step towards spirituality is to be solitary. Lord Mahavira attached great importance to the state of solitariness. Meditation in solitude is considered highly important. A person who learns to be solitary even while living among the crowd has learnt to lead a life free of tension. This is the truth and the essence of spirituality. Spirituality does not mean living in physical loneliness, which is achieved by renouncing society and living in a secluded place. the biggest philosophy of successful living is to realize solitude while living among people.

The causes of mental tension arising in the family and the community can be sought within this fourfold truth. Tension generally arises when a man faces an unpleasant situation. A father expects his son to take care of him in his old age. But, when he become old the son cuts off the relationship and separates from him. The father becomes tense and restless, and his life becomes a burden to him.

Only those who have achieved these four truths can have a spiritual personality. They lead a life full of happiness and bliss.

The four contemplations are quite practical. In the context of preksha dhyana, we have accepted sixteen types of contemplation. Each contemplation is practised for months togther and only then do they get assimiliated into our lives. The practice of contemplation is an infallible soultion for all problems and is the most divine step for reaching the pinnacle of spirituality.

❐

एकत्व की अनुप्रेक्षा

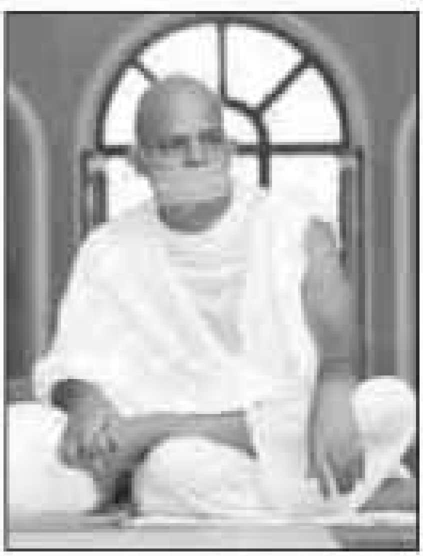

दुनिया में आदमी परिवार, समाज और देश में रहता है। उसका उनके प्रति लगाव का भाव होता है, लेकिन देखना यह आवश्यक होता है आदमी की अभिमुखता आत्मा की ओर है या पदार्थों की ओर। आदमी को दुनिया में रहते हुए भी 'मैं अकेला हूं' ऐसी अनुप्रेक्षा करे, फिर कोई सवाल यह भी है कि आदमी परिवार, समाज आदि के साथ रहते हुए भी अकेला कैसे हो सकता है?इसका उत्तर है कि आदमी अकेला जन्म लेता है, अकेला अपने कर्मों को पूर्ण करता है और अकेला ही मृत्यु को प्राप्त करता है। किसी भी मनुष्य के किसी भी क्रिया-कलाप में कोई सहयोगी नहीं होता। आदमी को अपने कर्मों का फल उसे स्वयं भोगना पड़ता है, इसलिए आदमी इस संसार में रहते हुए भी अकेला होता है। आदमी को अकेलेपन की अनुप्रेक्षा करने से आदमी मोह से दूर हो सकता है और मोह के कारण होने वाले पापों से भी बच सकता है। जब आदमी यह समझ ले कि अपने किए कर्मों का फल स्वयं भोगना पड़ता है तो आदमी को अपने को पाप कर्मों से बचाने और धर्म के मार्ग पर आगे बढ़ने का प्रयास करना चाहिए। सम्यक् दृष्टि वाला मनुष्य अपने परिवार का भरण-पोषण इस प्रकार करता है, जैसे एक धाय माता बच्चे का पालन तो करती है लेकिन वह बच्चे के प्रति मोह नहीं करती, क्योंकि उसे पता होता है कि बच्चा उसका नहीं है। आदमी एकत्व की अनुप्रेक्षा कर अहंकार और मोह रूपी पापों से स्वयं को बचा सकता है और स्वयं को आध्यात्मिकता के क्षेत्र में आगे बढ़ा सकता है।

- आचार्य महाश्रमण

Shvas Preksha

Mukhya Niyojika
Sadhvi Vishrut Vibha

Breath acts as a bridge between the body and the consciousness. Breath is the invigorating element of the body that keeps it active and running. A person may survive without food and water for days but not without air (breathing). Therefore, it is essential for all of us to learn and practice the correct way of breathing the vital force of life.

Objectives

Following are the objectives of perception of breathing

- To practice scientifice way of complete breathing with total awareness.
- To be free from attachment and aversion.
- To improve concentrationand alertness.
- To overcome negative emotions.
- To live in the present moment.

Significance of long breathing

On an average, under normal conditions, human beings breathe 15 times in a minute (both inhalation and exhalation takes 2 seconds each). However, during the outburst of emotions or anxiety, the breathing rate increases to 20 to 25 breaths per minute, and may increase further with increase in the intensity of the emotions. It is believed that rapid breathing is often harmful to the health and may disturb the blood circulation. Under such situations, perception of long breathing, does not only control the breathing rate but also help to decrease it to about 6 breaths each minute. The ideal breathing rate of one breath per minute is also achievable. We do not allow a single breath to go in and come out without being fully aware of it.

Generally, majority of us dont's breathe to the full capacity of our lungs. Incomplete breathing leds to insuffcient supply of oxygen to the metabolizing cells, that in turn affects working efficiency of the body. In contrast, long breathing makes the body energized. Long breathing for 10-15 minutes can rejuvenate an otherwise exhausted person. In addition, long breathing helps in keeping helps in keeping the brain active and responsive, which has three times higher demand for oxygen as compared to the rest of the body.

Technique

During the perception of the breathing, all three sets of muscles (intercostal, diaphragm, clavicle)

work in a rhythmic fashion to facilitate complete breathing. During the process of correct breathing the air enters the lungs as a continuous flow without panting. During inhalation, the lungs get filled with the air and the diaphragm is lowered that in turn expands the abdomen. In contrast, during exhalation the lungs contract along with the abdominal muscles.

The following sequence of steps illustrates the scientifically correct way of breathing:

- Relax the body with your eyes closed.
- Make the breath slow, long, and rhythmic.
- During inhalation, the abdominal muscles should expand.
- During exhalation, the abdominal muscles should contract.
- Feel the vibrations of breath at the navel.
- To avoid any type of stress, don't enforce exceedingly longer breathing.
- Practice long, and rhythmic breaths which can be characterzied as mentioned below:-
- Establishment of uniformity of time taken during the inhalation and exhalation as the process is repeated over and over again.
- The time taken for exhalation should exceed that of the inhalation time. For example, if inhalation is completed in 8 seconds, then exhalation must continue at least for 12 seconds. Extended exhalation ensures efficient removal of carbon dioxide from the lungs, thereby alleviates stress and fatigue.

Benefits

Regular practice of perception of breathing imparts following physical, psychological and spiritual benefits to the preactitioner:

(a) Physical

- Regualtion of blood pressure
- Enhancement in the bio-energy
- Reinforcement of the vital energy required to maintain good health
- Regulation of the nervous system and the endocrine system
- Purification of the blood and promotion of good health

(b) Psychological

- Sharpens reasoning skills and memory power
- Enhancement of mental concentration
- Provides peace of mind
- Alleviation of restlessness and anxiety
- Improvement in the working efficiency of the mind and the body

(c) Emotional

- Establishes control and balance of emotions
- Alleviation of negative traits such as ego, anger, and greed
- Alleviation of outburst of emotions

(d) Spiritual

- Self realization
- Equanimity

Conclusion

Breathing is an event of the immediate present and is perceived instantly as it happens. It makes us live in the present moment and hence, keeps one away from the thoughts and worries of the past and future. The visualization of each breath with full awareness gives us a moment of experiencing pure consciousness that is free from attachment and aversion, desires and passions. Hence, perception of breathing guides us in our journey to self-realizations. If children are taught to practice long breathing daily for 20 minutes from the very begining, their lives will be filled with energy, vigour, and enthusiasm. It will help them alleviate their pride, anger, and greed. ❒

मनुष्य में जितनी क्षमता होती है, उसका उतना उपयोग नही होता।
इसका एक कारण है संकल्प का अभाव।
- आचार्यश्री महाश्रमण

श्रद्धावनत

नवीन बैंगाणी

कोलकाता

संचालित प्रेक्षावाहिनियों के संवाहकों की सूची

क्रम सं.	नाम / स्थान	सम्पर्क सूत्र	क्रम सं.	नाम / स्थान	सम्पर्क सूत्र
01	राज गुनेचा, दिल्ली (कृष्णानगर)	09268729037	42	अनंत कुमार जैन, गांधीधाम	09426217140
02	कविता सुराणा, दिल्ली (शाहदरा)	09818939020	43	अशोक जैन, सवाईमाधोपुर	09413380835
03	सरिता चोपड़ा, दिल्ली (शालीमार बाग)	09868716701	44	सज्जनराज बांठिया, पाली	09414121314
04	हनुमान बरड़िया, दिल्ली (लक्ष्मीनगर)	09310147197	45	निवेदिता नौलखा, टालीगंज	09836371000
05	मनीषा जैन, दिल्ली (उत्तम नगर)	09899592787	46	पुष्पा बैद, बेहाला	09831366760
06	श्वेता सेठिया, दिल्ली (लाजपतनगर)	09711970124	47	मंजू सिपानी, भवानीपुर	09804334560
07	रेणु बोथरा, दिल्ली (शास्त्रीनगर)	09968075932	48	पुष्पा जैन लेक टाउन	09830216254
08	अमराव दूगड़, दिल्ली (कृष्णानगर)	09310003313	49	मंजू सिपानी, अलीपुर	09804334560
09	मंजू बैद, दिल्ली (मॉडल टाऊन)	9680013936	50	बबिता लालेड़, काकुरगाछी	09831740337
10	विमला दूगड़, कांदीवली, मुम्बई	09004937723	51	प्रेम घारेवा, विशाखापट्टनम	09866102694
11	सूरज धोका, चेन्नई (साउकारपेट)	09381001574	52	गौतमचंद सालेचा, जसोल (पे बाकी)	09414108229
12	ललित दुगड़, सूरत	09327366335	53	डा. विजयश्री शर्मा, लाडनूं	08233344482
13	प्रवीण पुगलिया, कटक	09861366553	54	नरेन्द्र दुगड़, अमराईवाड़ी ओढ़व	07922893069
14	सुरेन्द्र ओसवाल, रायपुर	09425285121	55	रायचंद लूणिया, कांकरिया	09327004278
15	रीना सेठी, जयपुर	09785028111	56	कमल भंसाली, खुश्कीबाग	09431230892
16	सरिता कांकरिया, जोधपुर	09829024782	57	जंवरीलाल सालेचा, बालोतरा	09414108209
17	सुरेश जैन, टिटिलागढ़	09437036494	58	राजकुमारी बरड़िया, कोलकाता	09038005252
18	विकास सुराणा, इचलकरंजी	09326021312	59	अंकिता नन्दकिशोर जैन, केसिंगा	09938820528
19	पुष्पा गन्ना, बैंगलोर	09686366250	60	चंदा बोरड़, हैदराबाद	09849807591
20	सुनील छाजेड़, नागपुर	09881556411	61	सोनूकुमार जैन, सिन्धकेला	09776582348
21	निशा कुम्भलिया, विशाखापटनम्	09491765646	62	अनिल बैंगाणी, बरपेटा रोड़, असम	09435124834
22	सुरेन्द्र / भारती, नोएडा	09899942507	63	सरिता जैन, तुसरा	09438449559
23	अनुराग बैद, नोखा	09414417112	64	बिमल कुमार जैन, उत्केला	09937074670
24	महेन्द्र मेहता, जोधपुर शहर	09413058604	65	ममता जैन, कांटाभजी	09439870908
25	धरमचंद बाफना अलीपुरद्वार	09434184608	66	चंदन जैन, भवानीपटना	09937892805
26	जितेन्द्र पुगलिया, कोयम्बटूर	09843015393	67	नीलम बोथरा, फारबिसगंज	09471955651
27	शशि गांधी, न्यूअलीपुर	098304334560	68	राकेश सिंघी, बैलूर	09830031321
28	मनोज संकलेचा, पुणे	09822274374	69	मनोज जैन, बोलांगीर	09437037788
29	देवीलाल कोठारी, केलवा	09413058604	70	प्रवीण बैद, बंगाईगांव	09435021191
30	सुबोध दूगड़, उदयपुर	09414263586	71	सुमितकुमार जैन, बैंगामुंडा	09658961337
31	नौरतन पारख, सिलीगुड़ी	09233423523	72	डा. माया शाह संग्रामपुरा, सूरत	09374533287
32	प्रवीण मेड़तवाल, उधना	09428398210	73	आनंद सेठिया, नागपुर	09373471631
33	जेठमल चौधरी, भीलवाड़ा	09214966459	74	श्रीमती अंजू जैन, हावड़ा, कोलकाता	09681230341
34	जयचंद दूगड़, कूचबिहार	09870272834	75	कन्हैयालाल बोथरा, गंगाशहर	09414142617
35	टीकमचंद बैद, दीनहट्टा	09547344571	76	उषा धाड़ेवा, बांगुर	09433092831
36	धर्मचंद बोथरा इरोड़	09362258194	77	मंजू सिपानी, बालीगंज	09804334560
37	संदीप मादरेचा, डोम्बिवली	09820368498	78	मंजू सिपानी, शिवतल्ला	09804334560
38	भारती डांगड़ा, कुर्ला	09869514103	79	राजेश बैद, न्यूसीजी रोड, अहमदाबाद	09016721435
39	सुनीता कोठारी, रतलाम	08989465876	80	विमला दूगड़, कांदीवली, मुम्बई	09004937723
40	ममता बांठिया, सूर्यनगर, दिल्ली	08010081967	81	श्रीमती सुमन चौपड़ा, लूणकरनसर	09413400818
41	भरत कुमार जैन, भीम	09414788474	82	यशपाल गुप्ता, मोरपुर, पंजाब	09780728910

संचालित प्रेक्षावाहिनियों के संवाहकों की सूची

क्रम सं.	नाम/स्थान	सम्पर्क सूत्र	क्रम सं.	नाम/स्थान	सम्पर्क सूत्र
83	सुश्री प्रज्ञा जैन, नीमच	9425187846	93	ओमप्रकाश जैन पीलीबंगा	9460646804
84	सविता रुणवाल, कोल्हापुर	9850222241	94	सीमा जैन, जगराओं	9988943738
85	विद्याधर बोरड़	9982858336	95	सुशीला पुगलिया, सरदारशहर	9982116227
86	मंजू सिपानी, शिवतल्ला	9804334560	96	दीपिका बोथरा, बीकानेर	9351321988
87	सीमा गिड़िया, कोलकाता	9433955595	97	गौतम गादिया,सूरत	9377555545
88	श्री रवि छाजेड़, नार्थ हावड़ा	9433022720	98	राजेश डागा, जोधपुर	9413371045
89	मोहनलाल बोथरा, बालीगंज	9331019457	99	महावीर संचेती, उधना 2	9825788460
90	श्री बंसत मालू, अहमदाबाद	9327002738	100	वंदना नाहर, बैंगलोर	7406150330
91	श्री मदन कोठारी, सूरत	9374532225	101	महावीर संचेती, सूरत	9825788460
92	श्रीमती मुन्नी देवी डागा चूरू	9413879404	102	रमेश नौलखा	981023674

संभावित प्रेक्षावाहिनी संवाहकों की सूची

क्रम सं.	नाम/स्थान	सम्पर्क सूत्र	क्रम सं.	नाम/स्थान	सम्पर्क सूत्र
1	राजेश बैंगाणी, अररिया कोर्ट	9431259851	19	विनोद राठौड़, मुम्बई	9923767437
2	वीरेन्द्र संचेती, कटिहार	9431260358	20	विकास जैन, मुम्बई	9819760767
3	कमलेश धाकड़, नाथद्वारा	9461805833	21	आनंद लूणिया, कोलकाता	9330997778
4	राकेश संचेती, मोमासर	9694588430	22	प्रेमलता चोरड़िया, कोलकाता	9433081999
5	दिलीप दूगड़, गौहाटी	9435404819	23	छगमराज बैद, तेजपुर	9435081434
6	दीपशिखा बैद, हाजरा कक्षा	9007974585	24	अभयराज बैंगानी, बीदासर	9954213279
7	सुशील बोरड़, विजयनगरम	9440985577	25	दीपक टाटिया, चेन्नई	9176374822
8	महेश मेहता, कच्छ	9879360855	26	संगीता नाहटा, सूरत (वीआईपी)	9376630760
9	दिनेश नौलखा, मरोल, मुम्बई	9892765261	27	अनिल रांका, सूरतगढ़	9414092230
10	मंजू लूणिया, बैंगलूर	9343411603	28	वंदना नाहर, बैंगलोर	7406150330
11	प्रतिमा बोथरा, कोलकाता	9331297796	29	पूनम गादिया, चिकमंगलूर	9481156545
12	अनिल सांखला, जलगांव	9422566311	30	प्रकाश सुराणा, सैंथिया	9007222404
13	अभिषेक बोथरा, फालाकाटा	9434137753		प्रभारी	
14	नंदकुमार जैन, हिसार	9215902677	1	अलका सांखला, सूरत	09427491613
15	सुमन नाहटा, कोलकाता	9007078440	2	डॉ. धारिणी जैन, ओडिशा	09916317230
16	प्रियदर्शिनी जैन, हैदराबाद	8374704700	3.	बिमल गुनेचा, दिल्ली	97164799904
17	प्रियदर्शिनी जैन, हैदराबाद	8374704700	4.	आनन्द सेठिया	09373471831
18	राजेश भादानी, श्री डूंगरगढ़	9887701998			

भावना, क्रिया और परिणाम की एक शृंखला है। कार्य का परिणाम प्रायः भावना पर आधारित होता है।
शुद्ध भावना से की गई क्रिया शुभ परिणाम लाती है। – आचार्य महाश्रमण

हार्दिक शुभकामनाओं सहित

सरला देवी – महेन्द्र कुमार जैन

महनसर (राजस्थान) - किशनगंज (बिहार)

बैंगलोर (कर्नाटक)

अध्यात्म का प्रवेश द्वार

● साध्वी कनकश्री

भारतीय साधना पद्धति में मन की शान्ति, चित्त की शुद्धि और निर्विकल्प समाधि की उपलब्धि हेतु अनेक उपाय निर्दिष्ट हैं। उनमें एक है-स्वाध्याय।

उपनिषदों ने गाया-'जैसे अरणि स्थित आग मंथन के बिना प्रकट नहीं होती, वैसे ही आत्मस्थ ज्ञान-दीप अभ्यास-योग-स्वाध्याय के बिना प्रज्वलित नहीं होता।' गुरुकुल से समस्त विद्या-शाखाओं में पारगामिता प्राप्त कर, घर जाते हुए शिष्य को गुरु शिक्षा के स्वर में कहते हैं-'स्वाध्यायान्मा प्रमदः'-स्वाध्याय में प्रमाद मत करना। तैत्तिरीय उपनिषद् में नाक ऋषि ने स्थापना की-'स्वाध्याय और प्रवचन सर्वोत्तम तप है।' श्री कृष्ण ने गीता में कहा-'स्वाध्याय महायज्ञ है।'

जैन शास्त्रों में स्वाध्याय को अंतरंग तप और दुःख-मुक्ति का श्रेष्ठ उपाय माना है। वह जैन मुनि की चर्या का अभिन्न अंग है। प्राचीन-काल में जैन मुनि के लिए दिन और रात के दो-दो प्रहर का समय स्वाध्याय-योग की साधना के लिए निश्चित था। शास्त्रकारों ने निर्देश दिया-आत्म-जिज्ञासु साधक ध्यान-योग तथा स्वाध्याय-योग में अपने आपको समर्पित करे। वह निरन्तर ध्यान-योग से स्वाध्याय-योग और स्वाध्याय-योग से ध्यान-योग का अभ्यास करे। ध्यान और स्वाध्याय की सम्पत्ति से परमात्मतत्त्व प्रकाशित होता है।

'स्वाध्यायाद् ध्यानमध्यास्तां ध्यानस्तोद् स्वाध्यायमामनेत्।
ध्यान-स्वाध्याय-सम्पत्त्या परमात्मा प्रकाशते।।'

जैन-परम्परा में चित्त-शुद्धि के लिए द्वादशांग-योग का विधान है। वह 'बारह प्रकार के तप' के रूप में भी जाना जाता है। उसमें दसवां प्रकार है-स्वाध्याय।

कल्पसूत्र भाष्यकार ने लिखा है-'तीर्थंकरों द्वारा निर्दिष्ट बारह प्रकार के तपोयोग में स्वाध्याय के समान तपः कर्म न कोई है और न कोई होगा।'

'बारस विहम्मितवे सब्भिंतर-बाहिरे कुसल-दिट्ठे।
न वि अत्थि न वि य होहि सज्झायसमं तवोकम्मं।।'

साधना के अनेक प्रकारों में स्वाध्याय सर्वाधिक सुगम साधन है। साधना का प्रारम्भ भी स्वाध्याय से होता है। 'ओघ' वृत्तिकार ने एक पद्य उद्धृत किया है-

'जया सुअसिक्खियं भवइ, तया सुज्झाइयं भवई।
जया सुज्झाइयं भवई, तया सुतवसियं भवई।।'

इससे ज्ञात होता है, ध्यान-योग और तपोयोग भी स्वाध्याय-योग के बिना सिद्ध नहीं होते। ध्यानी और तपस्वी बनने से पहले स्वाध्यायी बनना आवश्यक है। इस दृष्टि से स्वाध्याय को अध्यात्म का प्रवेश-द्वार माना जा सकता है। इसी तथ्य की पुष्टि निम्नांकित पद्य के माध्यम से होती है-

'पर-तत्ती निरवेक्खो, दुट्ठवियप्पाण नासण-समत्थो।
तच्च-विणिच्छयहेदु, सज्झाओ झाण-सिद्धियरो।।'

स्वाध्याय ध्यान की सिद्धि का हेतु है। स्वाध्यायशील व्यक्ति व्यर्थ की पराई चिन्ताओं से मुक्त रहता है। स्वाध्याय दुष्ट अमंगलमय संकल्प-विकल्पों को नष्ट करने में समर्थ और तत्त्व-निर्विचय का हेतु है।

स्वाध्याय को दो भागों में विभक्त किया जा सकता है।

1. सद्ग्रन्थों का अध्ययन-अनुशीलन।
2. आत्म-निरीक्षण या स्व-प्रेक्षा।

स्वाध्याय का सामान्य अर्थ है आध्यात्मिक ग्रन्थों का विधिवत् अध्ययन।

जैन आगमों में उसके पांच प्रकार निर्दिष्ट हैं-

1. वाचना-सद्ग्रन्थों का पठन-पाठन।
2. पृच्छना-संदिग्ध विषयों में प्रश्न करना, समाधान करना।
3. परिवर्तना-पठित ज्ञान का पुनरावर्तन करना।
4. अनुप्रेक्षा-अनुचिन्तन, अनुशीलन करना।
5. धर्मकथा-आध्यात्मिक चर्चा-वार्ता।

सद्ग्रन्थों का वाचन-यह स्वाध्याय-वृत्ति के विकास का आदि बिन्दु है। उसका अग्रिम बिन्दु है अनुशीलन एवं आध्यात्मिक चर्चा से जीवन के क्षणों को पवित्र और सार्थक बनाना। भारतीय परम्परा में सत्साहित्य के वाचन और अनुशीलन का अतिरिक्त मूल्य रहा है।

शास्त्रों के वाचन, श्रवण और अनुशीलन से दृष्टि का परिष्कार होता है। अन्तर्मुखता का विकास होता है। उससे व्यक्ति का आचार और व्यवहार प्रभावित होता है। सद्ग्रन्थों के अध्ययन-अनुशीलन से मन की गांठें खुल जाती हैं। आत्मा की निर्ग्रन्थ पर्याय प्रकट हो सकती है। ज्ञान चेतना का जागरण होता है। शारीरिक, मानसिक और भावनात्मक स्वास्थ्य उपलब्ध होता है। इसलिए कहा गया है, जिसे स्वाध्याय रूप चिन्तामणि उपलब्ध हो जाती है, वह कुबेर के रत्नकोषों को भी पराजित कर देता है। वाचन और मनन-ये दो मनुष्य को सदा जीवंत रखते हैं। वाचन से विचारों में नवीनता आती है। मननशीलता से विचार परिष्कृत होते हैं। दृष्टि पवित्र होती है।

पश्चिमी विचारक फ्रांसिस बेकन लिखते हैं-अध्ययन हमें आनन्द प्रदान करता है, अलंकृत करता है और क्षमता प्रदान करता है। उपनिषद् में कहा है-युवाध्यायकः-युवा वह है जो स्वाध्यायशील है। इसका तात्पर्य यह है कि युवापीढ़ी के लिए स्वाध्यायशील होना अत्यन्त आवश्यक है। किन्तु आज की उपभोक्ता-संस्कृति के भौतिकवादी दर्शन से जुड़ी युवापीढ़ी में स्वाध्यायशीलता का लोप होता जा रहा है। शैक्षणिक योग्यता नहीं, मात्र डिग्रियां हासिल करने के लिए जो पाठ्य पुस्तकें पढ़ी जाती हैं, वह स्वाध्याय नहीं है। पढ़ने और स्वाध्याय करने में मौलिक अन्तर है। स्वाध्याय में लम्बाई-चौड़ाई का नहीं, गम्भीरता का महत्त्व है। इसीलिए कहा है-कुछ पुस्तकें चखी जाती हैं, कुछ चबायी जाती हैं, कुछ

निगल-निगलकर खायी जाती है और कुछ पचायी जाती है। जिस अध्ययन से जीवन-दर्शन उपलब्ध हो, अन्तर्मुखता का विकास हो, अच्छे संस्कारों का जागरण हो और विचारों में प्रौढ़ता आती हो, वही स्वाध्याय के रूप में स्वीकृत है। इसके लिए रुचि का परिष्कार और उच्चकोटि के सत्वशील साहित्य का चुनाव करना अपेक्षित है। ऐसे साहित्य का गम्भीर अनुशीलन सामान्य से सामान्य व्यक्तित्व को नई आभा, नई गरिमा प्रदान कर सकता है।

एक युवक ने किसी सिद्ध योगी से पूछा-'जीवन को आनन्दित और दीप्तिमान बनाने का उपाय सुझाएं।' योगी ने मात्र तीन शब्दों में समग्र जीवन-दर्शन उंडेल दिया। वे शब्द हैं-

सुविचार, सत्संगति और सत्साहित्य का वाचन।

स्वाध्याय मस्तिष्क का रसायन है, इससे मस्तिष्क को पोषण मिलता है। उसका विकास होता है। इससे मन, बुद्धि के विकार मिटते हैं। चित्त की विकल्पशीलता समाप्त होती है। अच्छी पुस्तकें वे प्रकाश गृह हैं, जो समय-सागर के मध्य खड़े किए गए हैं।

पुस्तकें ज्ञानियों की समाधि है। पुस्तक खोलते ही महावीर, बुद्ध आचार्य शंकर, गांधी, विवेकानन्द, विनोबा, सूर, तुलसी आदि समाधिस्थ ऋषि जाग उठते हैं, मानो वे हमारे साथ बातचीत कर रहे हैं।

लोकमान्य तिलक ने कहा था-'मैं नरक में भी उत्तम पुस्तकों का स्वागत करूंगा। वे जहां भी होंगी, वह स्थान स्वर्ग बन जाएगा।'

जीवन के किसी भी क्षेत्र में अच्छी पुस्तकों के अध्ययन की उपयोगिता को अस्वीकार नहीं किया जा सकता। कहते हैं नेपोलियन ने छोटी उम्र में ही युद्धकला में प्रवीणता हासिल कर ली थी। उसकी रणनीति अद्भुत थी। इसका कारण था, वह प्रत्येक चढ़ाई में गोले-बारूद के साथ ढेर सारी किताबें भी साथ में रखता था और प्रायः आधी रात तक पढ़ता रहता था। सिकन्दर ने भी एशिया की चढ़ाई के समय यूनान से पुस्तकें मंगाई थी और वह युद्धकाल में नियमित पढ़ा करता था।

स्वाध्याय का दूसरा एवं मौलिक अर्थ है-स्वयं को जानना, स्वयं को देखना। 'स्व' का प्रत्यक्ष परिचय, स्वयं के अंतस् का स्पर्श। ग्रन्थों के वाचन से परायण की दुनिया को जाना जा सकता है, विभिन्न विद्या-शाखाओं में पारगामिता प्राप्त की जा सकती है, किन्तु स्वयं को नहीं जाना जा सकता। शास्त्रीय ज्ञान से मात्र जानकारियां, सूचनाएं एकत्रित की जा सकती है, पर चैतन्य के रूपान्तरण की आशा नहीं की जा सकती। इसलिए कहा गया-

Know yourself and know the world - पहले अपने आपको जानो फिर विश्व को जानने का प्रयत्न करो। एक पश्चिमी विचारक ने लिखा है-Every man is a volum if you know how to read him-प्रत्येक मनुष्य अपने आप में एक विशालकाय ग्रंथ है, यदि आप उसे पढ़ने की कला जानते हैं। स्वयं को पढ़ने की प्रक्रिया का पहला चरण है-अपने आमने-सामने खड़े होकर स्वयं को, स्वयं की वृत्तियों को देखें। पूरी ईमानदारी से देखें कि मैं कहां हूं?कैसा हूं?मैं चेतना के किस स्तर पर जी रहा हूं?और मेरे भीतर क्या है?इस प्रक्रिया के अन्तर्गत भीतर में जो भी दिखाई दे, उससे डरें नहीं। देखते चले जाएं, देखते चले जाएं।

दूसरा चरण-एकान्त स्थान में सहजतापूर्वक बैठकर वृत्तियों का दर्शन करें। कैसी भी शुभ-अशुभ, प्रीतिकर-अप्रीतिकर वृत्तियां चेतना के पटल पर उभरें, उन्हें नकारें नहीं, सहजता से स्वीकार करें। उन वृत्तियों के भीतर बैठे विराट् चैतन्य का अनुभव करें। यही है सम्यक् दर्शन। यही है गहरी से गहरी आत्म-रूपान्तरण की प्रक्रिया। पृथ्वी पर रूपान्तरण की सर्वाधिक प्रचलित जो प्रविधि है, वह यही स्वाध्याय महायज्ञ है। स्वयं का समग्रता से अध्ययन करने की यह पद्धति आधुनिक मानस-चिकित्सा और मनोविज्ञान की आधारशिला बन गई है। पश्चिम में एक चिकित्सा-पद्धति विकसित हुई है, उसका नाम है-'साइको एनालिसिस', इसके केन्द्र में स्वाध्याय ही है। यह विधि मनोकायिक रोगों की चिकित्सा में बहुत ही सफल सिद्ध हुई है।

सिगमंड फ्रायड, गुस्तावजुंग, आल्फ्रेड एडलर, सलीवान फ्रोम आदि जितने भी पश्चिमी मनोवैज्ञानिक हुए हैं, उन्होंने स्वीकार किया है कि आधुनिक मानव के मन को समझने के लिए स्वाध्याय बहुत ही कीमती तत्त्व है।

स्वाध्याय का चरम लक्ष्य स्वदर्शन अथवा चित्त-वृत्तियों का परिष्कार ही है, किन्तु यह बात सुनने या पढ़ने में जितनी प्रिय लगती है, उतनी सहज-सरल नहीं है। शिखर पर छलांग भरने की क्षमता हर किसी में नहीं होती। जन-सामान्य का रुझान प्रायः सहज-सरल विधि की ओर होता है। स्वाध्याय आंतरिक रूपान्तरण की सुगम प्रविधि है। इसका आलम्बन लेकर आत्मसाक्षात्कार के शिखर को भी छुआ जा सकता है।

साहित्य व्यक्ति के सच्चे संस्कारों को प्रतिनिधित्व करता है। मनुष्य-जीवन में विनय, विवेक, प्रफुल्लता, निष्ठा, मधुरता-इन गुणों का विशिष्ट उत्तम पुस्तकें को घर-परिवार की पूंजी माना जा सकता है। उस पूंजी का उपयोग अधिकृत व्यक्ति स्वयं तो करता ही है, उसके मित्र, स्वजन आदि भी उससे लाभान्वित हो सकते है।

अपेक्षा है, वर्तमान की युवापीढ़ी में सत्साहित्य के स्वाध्याय की अभिरुचि जागृत हो। उसके माध्यम से वह धर्म, दर्शन और संस्कृति का ज्ञान करें। मन को एकाग्र करें, आदतों का परिष्कार करें, व्यक्तित्व को रूपान्तरित करें तथा घरों के दीवान-खानों में कीमती फर्नीचर के समान ही सत्वशील साहित्य भी अति आवश्यक समझा जाए।

❑

सर्दियों का मौसम

वक्त है, एक बार फिर से खुद को **सेहतमंद**
और ऊर्जावान बनाने का :

जैन विश्व भारती लाडनूं अवस्थित
सेवाभावी आयुर्वेदिक रसानयशाला द्वारा निर्मित
सुपर्वप्राश (च्यवनप्राश का उन्नत स्वरूप)

स्वर्ण युक्त मकरध्वज, अभ्रक भस्म, केशर एवं चाँदी के संयोग से बना विशिष्ट योग

सेवाभावी सुपर्वप्राश :

पैंकिग	मूल्य
300 ग्राम	₹ 300.00
500 ग्राम	₹ 480.00
1 किग्रा	₹ 890.00

सुपर्वप्राश मंगवाने हेतु सम्पर्क करें :

SEVABHAVI
DEDICATED TO AYURVED

सेवाभावी आयुर्वेदिक रसायनशाला
जैन विश्व भारती
पोस्ट : लाडनूं-341306
जिला : नागौर (राजस्थान)
फोन : (01581) 226969
मोबाइल : 97849-31457
ईमेल sevabhavirasayanshala@gmail.com

प्रतिरोधक क्षमता के लिए च्यवनप्राश

पत्रकार : मुकेश रामावत

च्यवनप्राश के चमत्कारी गुणों के बारे में प्रायः सभी जानते हैं। इस आयुर्वेदिक जड़ी बूटियों वाले टॉनिक में अद्भुत स्वास्थ्य लाभ छिपे हुए हैं। यह माना जाता है कि च्यवनप्राश की खोज 'च्यवन' नामक एक ऋषि द्वारा की गयी थी। उन्होंने ही पहली बार, अपने यौवन और आयु को बढ़ाने के लिए इस चमत्कारी टॉनिक की खोज की थी। च्यवनप्राश में एंटी एजिंग तत्व मौजूद है जो पूरी तरह से हर्बल है। इसमें आंवला मुख्य सामग्री है जो बेहद शक्तिशाली एंटीऑक्सीडेंट माना जाता है। ज्ञात हो कि झुर्रियाँ, महीन रेखाएं और सफेद बाल बुढ़ापा आने के सूचक हैं। च्यवनप्राश में भारी मात्रा में एंटीऑक्सीडेंट पाया जाता है जिससे ये आपको युवा रहने में मदद करता है।

च्यवनप्राश क्या होता है

आयुर्वेद में च्यवनप्राश की बड़ी महत्ता बताई गई है। यह एक आयुर्वेदिक औषधि है जो बच्चे से लेकर बूढ़े सबको निरोग रखता है। इसे बनाने के लिए 40–50 घटकों की जरूरत पड़ती है। लेकिन मुख्य घटक आंवला है।ताजा आंवला विटामिन सी का बेहतरीन स्रोत होता है। इसे सुखाने या जलाने के बावजूद इसमें मौजूद विटामिन सी की मात्रा कम नहीं होती। च्यवनप्राश में औषधीय महत्व वाली लगभग 36 तरह की जड़ी-बूटियां होती हैं। केशर, नागकेशर, पिप्पली, छोटी इलायची, दालचीनी, वन्सलोचन, शहद और तेजपत्ता, पाटला, अरणी, गंभारी, बिल्व और श्योनक की छाल, नागमोथा, पुष्करमूल, कमल गट्टा, सफेद मूसली सहित कई वनस्पतियां मिलाकर च्यवनप्राश तैयार किया जाता है।

च्यवनप्राश के काम करने की विधि

कोशिकाओं की उम्र नहीं बढ़ने देता। शरीर के उत्तकों के पोषण स्तर में सुधार लाता है। मुक्त कणों से होने वाले नुकसान से व्यक्ति की त्वचा की रक्षा करता है। पाचन शक्ति बढ़ाता है (जो खूबसूरत त्वचा पाने के लिए महत्वपूर्ण है) शरीर के गहरे उत्तकों को ऑक्सीजन की कमी से बचाता है। स्मृति, एकाग्रता और सतर्कता में वृद्धि करता है। शरीर के इम्यून सिस्टम में सुधार और शरीर की प्रतिरोधक क्षमता को बढ़ाता है। रेस्पिरेटरी सिस्टम को मजबूत करता है। मासिक धर्म को नियमित करता है (प्री मेंस्ट्रुअल सिंड्रोम को कम करता है)। जुकाम और संक्रमण से रक्षा करता है।

च्यवनप्राश के फायदे

च्यवनप्राश खाने से कई फायदे होते हैं। च्यवनप्राश के सेवन से शरीर की रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ती है। पाचन शक्ति बढ़ती है और स्मरण शक्ति तेज होती है।शरीर में नई ऊर्जा का संचार कर जल्द बुढ़ापा आने से रोकता है। रेस्पिरेटरी सिस्टम को मजबूत करता है। खांसी, जुकाम और संक्रमण से रक्षा करता है।

मुझे याद है जब हमें बार-बार सर्दी या खांसी होती थी तो दादी माँ इम्यूनिटी को बढ़ाने के लिए च्यवनप्राश लेने को कहती थी। शायद हर भारतीय घरों में हेल्दी टॉनिक के रूप में च्यवनप्राश का इस्तेमाल किया जाता है। इम्यूनिटी को बढ़ाने के अलावा च्यवनप्राश के बहुत सारे फायदे भी हैं।

च्यवनप्राश से रक्तचाप नियंत्रित

यकृत और आंतों से विषाक्त पदार्थों को दूर करता है। खून साफ करता है, हीमोग्लोबिन बढ़ाता है और कोलेस्ट्रोल के स्तर को नियंत्रित करता है। रक्तचाप को नियंत्रित करता है। बालों और नाखूनों को मजबूत बनाता है। वजन घटाने में सहायक है। आजकल खाने में कोलेस्ट्रोल की मात्रा ज्यादा होती है। इससे दिल की बीमारी होने का खतरा बढ़ जाता है। इससे युवकों में हृदयरोग होने का खतरा बढ़ जाता है। इसमें ऐसे हर्बस होते हैं जो शरीर से टॉक्सिन्स निकालते हैं और ब्लड सरकुलेशन को बेहतर बनाते हैं। अनोखे हर्बस से बना होने के कारण च्यवनप्राश रक्त को साफ करके शरीर के नैचुरल प्रोसेस को संतुलित करने में मदद करता है।

▲ श्वसन प्रणाली के लिए अच्छा होता है– च्यवनप्राश में इतनी आयुर्वेदिक औषधियां होती हैं जो फेफड़ों के काम को आसान करने के साथ-साथ शरीर में नमी को संतुलित करती है। जिन लोगों को दमे की पुरानी बीमारी होती है उनको अपने खाने में च्यवनप्राश को शामिल करना चाहिए।

▲ मस्तिष्क के कार्य को उन्नत करता है– च्यवनप्राश में आंवला, ब्राह्मी, बादाम तेल, अश्वगंधा आदि होते हैं जो मस्तिष्क के कार्य को बेहतर बनाने में अहम् भूमिका को निभाते हैं। अनुसंधान से यह पता चलता है कि आयुर्वेद का यह फार्मूला याददाश्त को बढ़ाने, किसी भी चीज को सीखने की क्षमता को उन्नत करने, स्मृति बनाए रखने की क्षमता को बढ़ाते हैं।

▲ इम्यूनिटी पावर बढ़ाता है– च्यवनप्राश में आंवला मूल सामग्री होता है जो विटामिन सी का स्रोत होता है और यही इम्यूनिटी पावर को बढ़ाता है। एक अध्ययन से यह पता चला है कि मॉक्रोफेज (macrophage) नाम का इम्यून सेल होता है जो इन्फेक्शन होने के चांस को कम करता है।

▲ एजिंग समस्याओं को कम करता है– च्यवनप्राश में बहुत सारे एन्टीऑक्सिडेंट्स होते हैं जो फ्री रैडिकल्स से त्वचा को होने वाली क्षति को कम करता है। इसका मतलब यह है कि इसके नियमित सेवन से चेहरे पर झुर्रियां और बारीक रेखाएं आने की संभावना कम हो जाती है। जो हमेशा युवा बना रहना चाहते हैं वो च्यवनप्राश को खाना न भूलें।

च्यवनप्राश से परहेज

बरसात के दिनों में अक्सर हमारी पाचनक्रिया गड़बड़ा जाती है। इसलिए इस दौरान च्यवनप्राश खाने से परहेज करें क्योंकि यह भारी होता है जिससे अपच, एसिडिटी और कब्ज आदि की समस्या हो सकती है। आंवला के चलते कुछ लोगों को दस्त लगने की शिकायत भी हो जाती है। इसमें शर्करा की मात्रा ज्यादा होती है। इसलिए मधुमेह के रोगी इसका सेवन करने से पहले डॉक्टर की सलाह अवश्य लेवें।

च्यवनप्राश खाने का तरीका

इसको ठंडे या गर्म दूध के साथ ले सकते हैं। इसको यूं ही खा सकते हैं, या रोटी में लगाकर भी खा सकते हैं। च्यवनप्राश को सालभर खाया जा सकता है। खट्टी और मसालेदार चीजें च्यवनप्राश खाने के आधे घंटे बाद ही खाएं क्योंकि ये जड़ी-बूटियों के प्रभाव को कम कर देती है। दस्त, नकसीर या छाले होने पर च्यवनप्राश का प्रयोग न करें, क्योंकि इसकी तासीर गर्म होती है। इसे पांच साल से कम उम्र के बच्चों को नहीं खिलाना चाहिए। अगर बच्चों को भी दे रहे हैं तो एक बार में आधा चम्मच से अधिक न खिलाएं।

❐

सर्दी-जुकाम-खांसी

- डॉ. जीवनलाल गांधी

सर्दी-जुकाम-खांसी तथा दमा आदि श्वसन प्रणाली के अवयवों से संबंधित व्याधियां हैं। सर्दी नाक से शुरू होकर गला, श्वास-नलिका, कान को आक्रान्त करती है तथा फेफड़ों में पहुंचकर दमा को प्राप्त हो जाती है।

लक्षण : नाक में खुश्की, गले में खराश, खुजली, छींकों का आना, नाक, आंखों से पानी आना, नाक से श्लेष्मा निकलना जो शुरू में सफेद व बाद में पीलापन लिए होता है। गले एवं नाक की श्लैष्मिक झिल्ली लालाईयुक्त हो जाती है। सुस्ती, आलस्य, थकान, सिरदर्द, ज्वर मुंह का स्वाद फीका या बेस्वाद होना, अन्न के प्रति अरुचि तथा अंग-अंग में दर्द इत्यादि लक्षण सर्दी होने पर एकाधिक उपस्थित होते हैं।

उपद्रव : इन लक्षणों के बार-बार होने पर कई उपद्रव उत्पन्न हो जाते हैं, जैसे- नाक की हड्डी का टेढ़ा होना, नाक में मस्सों का होना, नाक में चेहरे के ऊपर स्थित साथिछ अस्थियों में श्लैष्मिक नासाग्रन्थ उभड़ना होना, लसिकावाहिनियों, गलग्रन्थियों का बढ़ना, घ्राण शक्ति का घट जाना, टॉन्सिल का बढ़ना, सामान्य सिरदर्द का माइग्रेन में बदल जाना, कर्णनलिका में शोथ, कान संबंधित व्याधियां, कान से पूय आना, घ्राण क्षमता घट जाना, बार-बार खांसी व ज्वर होना, जीर्णकाल, दमा व फेफड़ों की अन्य व्याधियां, श्वास में कष्ट होना, आंखों पर दुष्प्रभाव होकर दृष्टिदोष उत्पन्न होना, रोग प्रतिरोधक क्षमता घटकर अनेक पदार्थों के प्रति असहिष्णुता आना, त्वचा में खुजली, फोड़े-फुंसियों का होना।

कारण : आधुनिक चिकित्सा विज्ञान विविध सूक्ष्म कीटाणुओं तथा वायरस को इसका कारण मानता है। यह संसर्गज व्याधि कहलाती है। दूषणन्दर प्रदूषित वायु, अतिशीत व अतिगर्मी का होना, आद्र हवा, मौसम परिवर्तन, गरम-ठण्डा एक साथ सेवन, भीड़-भरे स्थानों में रहना, धूल, धुआं, पुष्प-पराग इत्यादि अनेक बाह्य पदार्थों की अतिसंवेदनशीलता होना। कुछ व्यक्तियों में यह आनुवांशिक कारणों से भी होता है। प्राकृतिक स्वास्थ्य विज्ञानानुसार गलत आहार विहार, सर्दी के प्रमुख कारण होते हैं। अधिक खाने की प्रवृत्ति, अहितकर, गरिष्ठ आहार, अप्राकृतिक निःसत्व आहार, घी तेल, शक्कर, मिर्च-मसाले युक्त आहार, बेकरी पदार्थ, फास्ट-फूड से शरीर की रोग प्रतिरोधक क्षमता कम हो जाती है। जिससे यह व्याधि शुरू होती है। एक बार शुरू होने पर जीवन-शैली में अनियमितता इसको स्थायी रूप प्रदान कर देती है। मानसिक तनाव इसे और स्थायी बना देता है।

सर्दी क्या है? : श्लैष्मिक झिल्ली में प्रदाह व सूजन का होना सर्दी-जुकाम कहलाता है। इस शोथ के लक्षण जब श्वासवहसंस्थान में दृष्टिगोचर होते हैं तब हम सर्दी नाम से संबोधित करते हैं, जो नासागुहा से शुरू होते हैं। श्लैष्मिक झिल्ली शरीर के समस्त अवयवों के संरक्षण हेतु प्रकृति प्रदत्त लुआबदार आवरण है। जिन अवयवों की श्लैष्मिक झिल्ली में सूजन होती है, उनसे एक चिकना घटक श्लेष्मा निःसृत होता है। अवयवों के कार्य, रचना भिन्न होने से उनमें उद्भूत लक्षणों में भिन्नता पाई जाती है।

सर्दी के विभिन्न रूप : नाक की श्लैष्मिक झिल्ली में शोथ 'सायनासाइटिस' नासा एवं मुख के छिद्रों में 'रसानुसायटिस', कान की अन्तर त्वचा में 'ओटायटिस', श्वास नलिका में 'ब्रांकायटिस', फेफड़ों में 'न्यूमोनायटिस', फुफ्फुस की वायु कोष्ठिका में 'दमा', मुख गलगुटिका में 'टान्सिलाइटिस', आंखों में 'कन्जक्टवायटिस' कहलाता है। इसी तरह आमाशय में शोथ को 'गस्ट्रायटिस' आंतों में 'कोलायटिस' मूत्राशय में 'सिस्टायटिस', महिलाओं की डिम्बवाहिनी में 'सैल्पिनजाइटिस' कहते हैं।

श्लैष्मिक झिल्ली का कार्य

इसका कार्य शरीर के अवयवों को लुआबदार चिकनी पर्त द्वारा ढककर श्लेष्मा एवं रोग प्रतिरोधी तत्वों का निर्माण कर शरीर निर्मित विकार एवं बाह्य वातावरण जनित कीटाणुओं से रक्षा करना है।

निदान : दूरबीन द्वारा नासागुहा परीक्षण से सूजन की तीव्रता का अनुमान होता है। नासाद्रव परीक्षण में हिस्टमीन-एन्जाइम पाया जाता है तथा ल्यूकोट्रिन एनजाईम, पी.जी.डी.-2, इम्यूनोग्लोबीन तथा रक्त में इसोनोफिल, न्यूट्रोफिल व बेसोफिल रक्त घटक बढ़ जाते हैं। सायनस एक्स-रे से कफथिक्स से उनकी मोटाई का पता चलता है।

उपरोक्त निदान से केवल सर्दी के लक्षण व परिणाम ही प्राप्त होते हैं। मूल कारण अछूते रह जाते हैं। इसलिए एलर्जी जांच, जिसमें चमड़ी को छेदकर तीव्रप्रतिक्रिया उत्पन्न करने वाले एलर्जिक पदार्थों की पहचान एवं सीरम जांच द्वारा एलर्जी उत्पन्न करने वाले घटकों की पहचान भी की जानी चाहिए।

उपचार : आधुनिक चिकित्सा शास्त्र द्वारा प्रयुक्त औषधि, शल्यक्रियाएं तथा शोथ दूर करने हेतु नाक में स्थानीय स्प्रे केवल लाक्षणिक लाभ प्रदान करते हैं। इससे सर्दी दूर होने की बजाय जीर्णता को प्राप्त होती है तथा अन्य असाध्य बीमारियों को भी जन्म देती है।

उपचार में प्रयुक्त औषधियां : हिस्टेमीन निरोधक औषधियां : मुख द्वारा प्रयुक्त हिस्टेमीन निरोधक औषधियां खुजली एवं स्राव को दबा देती है लेकिन इसके दुष्परिणाम स्वरूप तन्द्रा छाना, आंखों की होल ऊपर होकर दृष्टिदोष, कब्ज तथा पेशाब में रुकावट इत्यादि उत्पन्न होते हैं।

नासिका स्प्रे : इसमें एन्ड्रिनोर्जिक औषधि प्रयुक्त की जाती है। यह रासायनिक सम्प्रेषक हार्मोन नारएड्रीनलीन मुक्त करती है जो स्थानीय वेदना शमन के साथ शोथ को कम करती है। किन्तु इससे नाक की अंदर त्वचा शुष्क हो जाने से अन्य उपद्रव शुरू हो जाते हैं।

कार्टिकोस्टेराईड : इसको मुख द्वारा, स्प्रे द्वारा अथवा इंजेक्शन के माध्यम से दिया जाता है। इससे त्वरित लाभ तो होता है, किन्तु मूत्रावरोध, अनिद्रा, उत्तेजना इत्यादि नए उपद्रव शुरू हो जाते हैं।

प्रतिरक्षा चिकित्सा : इनको त्वचा के नीचे इंजेक्शन के रूप में लम्बे अर्से तक दिया जाता है। यह कृत्रिम उपायों द्वारा प्रतिरोधकता निर्माण की प्रक्रिया है, किन्तु यह भी कामयाब नहीं होता।

शल्यकर्म : सायनस से संचित श्लेष्मा को सूचिवेध द्वारा निकाला जाता है। इससे तत्काल तो लाभ होता है किन्तु कुछ समय पश्चात् पुनः स्राव संचय होने लग जाता है। इसके अतिरिक्त नासिका में होने वाले मस्सों को भी शल्यकर्म द्वारा निकाल दिया जाता है। किन्तु मस्से फिर से दूसरी जगह हो जाते हैं।

इस तरह औषधि, शल्यकर्म तथा प्रतिरोधी चिकित्सा स्थायी लाभ देने के स्थान पर विकृति प्रक्रियाओं को स्थायी बना देते हैं तथा इसको दमा, एलर्जी व अन्य कष्टसाध्य एवं असाध्य रोगों में परिवर्तित कर देते हैं। आयुर्वेद एवं अन्य औषधि उपचार भी स्थायी लाभ प्रदान नहीं कर पाते।

प्राकृतिक चिकित्सा सिद्धान्त : सर्दी मात्र श्लैष्मिक कला एवं समय-समय पर दिखाई देने वाली विकृतियों तक सीमित नहीं होती। यह पाचनतंत्र एवं रक्त विकृति के कारण उत्पन्न होने वाला लक्षण मात्र है। पाचनतंत्र शुद्धि, विकारनिर्हरण तथा नासानली की विनष्ट श्लैष्मिक झिल्लियों में उत्पन्न विकृतियों को दूर करना स्थायी लाभ देते हैं। निम्न प्राकृतिक उपाय स्थायी लाभ प्रदायक पाए जाते हैं।

आहार परिवर्तन : सर्दी व उससे उत्पन्न विकार होने पर भूख मंद हो जाती है। अतः अच्छी भूख खुलने तक ताजा स्वच्छ जल या कोष्णजल पर रहकर 2-3 दिनों का उपवास करना चाहिए। पश्चात् रसाहार तीन से पांच दिनों तक लेना चाहिए। इसमें ताजे फलों का रस, सब्जियों का सूप 3-3 घण्टे से 200 मिली तक लेने से आमाशयिक अन्तर त्वचा में सुधार हो जाते हैं, जो सर्दी जुकाम की कमर तोड़ देते हैं। इसके पश्चात् ठोस आहार में फलाहार लेना चाहिए। इसमें सलाद, उबली सब्जियों या फलों का सेवन करना चाहिए। फल एवं सब्जियों का सेवन साथ में नहीं करना चाहिए। 3-4 घण्टे के अन्तराल पर 2 बार फल तथा 2 बार उबली सब्जियों का प्रयोग करना चाहिए। नींबू, संतरा, मोसमी इत्यादि खट्टे फल सर्दी बढ़ाते हैं। यह आम धारणा अत्यन्त भ्रान्तिमूलक है। इनमें सर्दी, जुकाम व दमा तक ठीक हो जाते हैं। इनके रोगनिरोधक तत्व विकार निर्हरण करते हैं तथा रोगप्रतिरोधक क्षमता बढ़ाते हैं। यदि शुरू में इनसे रोगलक्षण बढ़ते नजर आएं तो यह स्वास्थ्यप्रदायी प्रक्रिया के सूचक हैं। इनसे भयभीत न होकर इनका सेवन जारी रखना चाहिए। ❑

रोगमुक्ति दवाओं से नहीं, प्रकृति की शरण में जाने से

– पं. श्रीराम शर्मा आचार्य

रोगों का उपचार यही हो सकता है कि आहार-विहार की जिस विकृति के कारण वे उत्पन्न हुए हैं, उसे बदल और सुधार लिया जाए। शरीर में रोग-निरोधक शक्ति मौजूद है। वह बाहर से आने वाले विषाणुओं से भली प्रकार निपटने में समर्थ है और भीतर उत्पन्न होने वाले उपद्रवों को निकाल बाहर करने की क्षमता भी उसमें विद्यमान है। बीमारी के दिनों में अनावश्यक श्रम से शरीर को बचाए रखें और प्रकृति को अपना काम करने दें। हो सके तो जल, मिट्टी, धूप आदि के सेवन से प्रकृति द्वारा कुछ सहायता प्राप्त करें। घबराने की अपेक्षा रोग-निवृत्ति में जो थोड़ा समय लगे, उसे तितिक्षा बुद्धि से धैर्यपूर्वक सहन कर लें तो बीमारियों से सहज ही छुटकारा पाया जा सकता है।

शरीर के भीतर रोग-निरोधक शक्ति का विपुल भंडार भरा पड़ा है, जिसके द्वारा भीतर से उत्पन्न हुए अथवा बाहर से प्रवेश पाकर पहुंचे हुए रोग-कीटाणुओं का विनाश निरन्तर होता रहता है।

आंख में कभी कोई विष-कीटक जा पहुंचे तो तुरन्त आंसू निकलेंगे। इन आंसुओं में 'लाइसोजोम' नाम पदार्थ रहता है, जिसकी निरोध शक्ति अद्भुत है। यदि एक गैलन पानी में एक बूंद आंसू डाल दिया जाए तो वह एक अच्छा खासा कीटाणुनाशक बन जाता है।

शरीर में ऐसे ही अन्य कितने ही रोग-निरोधक तत्व विद्यमान हैं: यथा-लेजोंसिस, लाइसिंस, फैगिंस आदि। मुंह से स्रवित होने वाले रस, आमाशय के स्राव और आंतों से निकलने वाले पदार्थों में वह शक्ति पूरी तरह विद्यमान है, जो बाहर से प्रवेश करने वाले किन्हीं भी रोग-कीटाणुओं को नष्ट कर दे। नासिका की श्लेष्मा में रहने वाला 'नेटा' श्वास के साथ प्रवेश करने वाली विषाक्तता से निपट लेने में पूर्णतः समर्थ रहता है। शरीर में पाया जाने वाला 'लिउकोसिट्स' तत्व अपनी चुंबकीय विशेषता के कारण कहीं भी जाने रोग-कीटकों पर घेराबद्ध आक्रमण करता है और उन्हें मारकर ही चैन लेता है, वरन् उनके कलेवर को चमड़ी में छेद करके बाहर निकालने, अन्त्येष्टि करने तक युद्ध-कार्य में जुटा ही रहता है। रक्त में पाया जाने वाला प्लाज्मा इस लिउकोसिट्स के साथ कंधे से कंधा मिलाकर सहायता करता है। गामा ग्लोबुलिन भी कीटाणुविरोधी धर्मयुद्ध में अपनी भूमिका प्रस्तुत करते हुए आश्चर्यजनक रीति से दो-दो हाथ दिखाता है।

थोड़े से कष्ट से घबराकर तत्काल जादुई परिणाम देखने के लिए उतावले लोग ऐसी दवाएं ढूंढने के लिए दौड़ पड़ते हैं, जो क्षण भर में चमत्कार उपस्थित करें। डॉक्टर बीमारी की इस कमजोरी को समझता है। अस्तु, वह वैसी ही दवाएं देता है। इन दवाओं में शरीर की रोग-निवारक क्षमता की कष्ट अनुभूति की, ज्ञानतंतु-प्रणाली को दुर्बल करने भर की क्षमता होती है। रोग के कीटाणुओं को मारकर वे उग्र लक्षणों का भी शमन करती हैं, पर साथ ही छोड़ती जीवन-रक्षक तत्वों को भी नहीं। वे मित्र-शत्रु का भेद किए बिना शत्रुवध और आत्महत्या के दोनों प्रयोग साथ-साथ चलाती हैं। अस्तु, तत्काल थोड़ी राहत मिलने पर भी अंततः रोगियों को इतनी अधिक चिरस्थायी हानि उठानी पड़ती है कि वह जादुई चिकित्सा उन्हें बहुत महंगी पड़ती है।

तीव्र औषधियों के दुष्परिणाम जब बड़े पैमाने पर सामने आते हैं और बावेला मचता है, तब कहीं उन पर प्रतिबंध लगता है। इतनी अवधि में तो वे जनता को बहुत भारी क्षति पहुंचा चुकी होती है। न्यूनाधिक मात्रा में यही प्रभाव लगभग सभी एलोपैथिक दवाएं छोड़ती है। मंद औषधियां अपना मंद प्रभाव छोड़ती हैं, इसलिए उनके दुष्परिणाम भी उग्र नहीं होते और उनके विरुद्ध आंदोलन भी बड़ा नहीं होता। वे चलती रहती हैं, पर हानियां उनसे भी कम नहीं होतीं।

आंदोलन भी खड़ा नहीं होता। वे चलती रहती हैं, पर हानियां उनसे भी कम नहीं होतीं।

'विश्व स्वास्थ्य संगठन' के चिकित्सा विशेषज्ञों ने संसार के विभिन्न देशों से संगृहीत सूचनाओं के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला है कि प्रख्यात औषधि 'पेनिसिलिन' का अंधाधुंध प्रयोग नहीं होना चाहिए। उसकी प्रतिकूल प्रतिक्रियाओं को भी ध्यान में रखा जाना चाहिए। अकेले अमेरिका में उस औषधि की विपरीत प्रतिक्रिया के कारण पिछले ही दिनों एक हजार से अधिक व्यक्ति बेमौत मरे हैं।

'विश्व स्वास्थ्य संगठन' द्वारा प्रस्तुत प्रतिवेदन मे कहा गया है कि पेनिसिलीन का उपयोग कुशल चिकित्सकों को बहुत सोच-विचार कर ही करना चाहिए। जुकाम जैसी छोटी बीमारियों में उसे नहीं देना चाहिए और इस औषधि से बनी मरहमों को भी निरापद नहीं मानना चाहिए।

सिरदर्द नई सभ्यता की एक सुनहली देन है, जिससे विकसित कहलाने वाले देश दिन-पर-दिन अधिकाधिक ग्रसित होते चले आ रहे हैं। इसके लिए प्रयुक्त होने वाली घरेलू दवा एस्प्रीन है। इसका असली नाम एसिटाइल सलीसीलिक एसिड है। इसका काम उन चौकीदारों को लकवाग्रस्त कर देना है, जो हमारी अंतःस्थिति का विवरण प्रकट करते हैं। दर्द तो ज्यों-का-त्यों बना रहता है, केवल उसकी अनुभूति रुक जाती है।

अकेले अमेरिका मे हर साल कम से कम छह हजार टन (60 हजार कुंटल) एस्प्रीन खपती है। इसके उत्पादक सिरदर्द, जुकाम तथा दूसरे दर्दों को दूर करने वाली रामबाण दवा के रूप में विज्ञापन करते हैं जो प्रत्यक्षतः बहुत कुछ सही भी है। इसका चमत्कारी लाभ तत्काल देखा भी जा सकता है।

किन्तु उसका लगातार प्रयोग करने पर कितने दुष्परिणाम भुगतने पड़ते हैं, यह तथ्य भी अब भली प्रकार स्पष्ट होता चला जा रहा है। विशेषज्ञों के अनुसार एस्प्रीन के सेवन का हृदय पर बुरा असर पड़ता है। कान गूंजने लगते हैं, शरीर का तापमान गिर जाता है और एक नशीली अशक्तता का अनुभव होने लगता है। यह प्रत्यक्ष दिखाई देने वाले लक्षण हैं। उसके दूरगामी और मंद गति से बढ़ते चलने वाले दुष्परिणाम और भी अधिक हैं। वे इतने कष्टकर है कि एक प्रकार से सिरदर्द, जुकाम आदि का मरीज, इन बीमारियों से छुटकारा पाना तो दूर और कई प्रकार के स्नायुरोगों से ग्रसित हो जाता है।

ऐसे अनेक मूर्धन्य एलोपैथी डॉक्टर हैं, जिन्होंने गंभीरता से औषधि-प्रणाली की त्रुटियां और उनके द्वारा उत्पन्न होने वाली घातक प्रतिक्रियाओं को समझा है। उन्होंने ईमानदारी से जो कुछ समझा, उसे सर्वसाधारण के सामने व्यक्त किया और अपना हाथ दवाओं के उपयोग अथवा समर्थन से पूरी तरह खींच लिया।

न्यूयॉर्क के प्रो. स्मिथ ने कहा है-'रक्त में प्रवेश कराई गई दवाएं उतनी ही हानिकारक सिद्ध होती हैं, जितनी कि वे रोग-कीटाणु जिन्हें मारने के लिए रीढ़ लोगों को अटकलपच्चू दवाओं के साथ मौत के घाट उतार दिया करते हैं, जो अपने कष्ट से राहत पाने के लिए हमारी शरण में आए थे।'

इंजेक्शन लगाया गया था।' डॉक्टर फ्रैंक ने कहा है-'हम विशेषाधिकार प्राप्त हत्यारों द्वारा हर साल हजारों उन निरीह लोगों को अटकलपच्चू दवाओं के साथ मौत के घाट उतार दिया करते हैं, जो अपने कष्ट से राहत पाने के लिए हमारी शरण में आए थे।'

न्यूजीलैण्ड के रेडियम चिकित्सक डॉ. उलरिक विलियम्स तो एक बार खीजकर अपने धंधे के बारे में यहां तक कह बैठे थे कि औषधि विज्ञान और कुछ नहीं, मात्र नई बीमारी को पुरानी बीमारी में बदल देने का गोरखधंधा है।

लंदन के 'डेली हैरल्ड' में डॉ. चार्ल्स हिल का एक लेख छपा है जिसमें उन्होंने कहा है-'औषधियों की गोलियां बंदूक की गोली की तरह घाव तो नहीं करती, पर मनुष्य को हानि लगभग उतनी ही पहुंचाती है।' न्यूयॉर्क टाइम्स में नार्थ वेस्टर्न यूनिवर्सिटी की एक शोध रिपोर्ट का सारांश छपा है, जिसमें कहा गया है कि ताकत के नाम पर खरीदे और खाए जाने वाले विटामिन लाभ के स्थान पर हानिकारक सिद्ध होते हैं।

बाल रोग विशेषज्ञ डॉ. हालेन ने कहा है-'छोटे बच्चों का प्रयोग की गई दवाएं उनकी जीवनशक्ति को बेतरह क्षीण करती हैं, फलतः वे दुर्बलताजन्य अनेकानेक शिकायतों के चंगुल में फंसकर असमय ही अपनी जीवनलीला समाप्त कर जाते हैं।'

लंदन के प्रख्यात शरीरशास्त्री डॉ. वेली ने कहा है-'अब मेरा विश्वास दवाओं पर से उठ गया है। क्योंकि दवाएं रोगमुक्ति में जितना सहारा देती हैं, उससे कहीं अधिक रोगी की शक्ति को क्षीण और उसेक रक्त को विषाक्त बनाती चली जाती हैं। फलतः रोगी औषधियों से लाभ उठाने के स्थान पर बीमारियां बढ़ी है।'

इंग्लैण्ड के मूर्धन्य डॉक्टर जॉन एबरनेथी इस निष्कर्ष पर पहुंचे थे कि डॉक्टरों की वृद्धि के कारण ही उस देश में बीमारियां बढ़ी हैं।

अंग्रेज सर्जन सर एस्टले कूपर ने अपने धंधे की अपूर्णता पर क्षोभ व्यक्त करते हुए कहा था-'औषधि विज्ञान अटकलबाजियों से उत्पन्न हुआ है और हत्याओं के साथ विकसित हुआ है।'

न्यूयॉर्क कॉलेज ऑफ फिजिशियन एंड सर्जन के प्रो. ए.एच. स्टीवंस ने अपनी विस्तृत जानकारी के आधार पर कहा है-'ज्यों-ज्यों डॉक्टर बूढ़ा होता जाता है त्यों-त्यों उसका विश्वास औषधियों पर से उठता जाता है।'

फिलाडेल्फिया के जेफरसन मेडिकल कॉलेज के प्रो.एस.डी. ग्रोस ने कहा है-'बीमारियों के असली कारणों के संबंध में हमारी जानकारी नगण्य होती है और जिन दवाओं का हम उपयोग करते हैं, उनकी प्रतिक्रिया के संबंध में तो हम बहुत ही कम जानते हैं, यद्यपि दावे हमारे बहुत लम्बे-चौड़े होते हैं।'

❒

मनुष्य में जितनी क्षमता होती है, उसका उतना उपयोग नहीं होता।
इसका एक कारण है संकल्प का अभाव। - आचार्यश्री महाश्रमण

श्रद्धावनत

प्रकाश बरड़िया (पारस), रीता, पीयूष, अमन
(हैदराबाद-सरदारशहर)

जीवन विज्ञान से व्यक्तित्व रूपान्तरण

लाडनूं। जैन विश्व भारती परिसर स्थित जीवन विज्ञान इंटरनेशनल रिसर्च एण्ड ट्रेनिंग इंस्टीट्युट में जीवन विज्ञान दिवस का आयोजन आचार्यश्री महाश्रमणजी के विद्वान् शिष्य मुनिश्री स्वस्तिककुमारजी के पावन सान्निध्य एवं केन्द्रीय जीवन विज्ञान अकादमी तथा विमल विद्या विहार के संयुक्त तत्वावधान में किया गया। कार्यक्रम का प्रारम्भ नमस्कार महामंत्र के उच्चारण के साथ हुआ। विद्यालय की छात्राओं ने ईशा अग्रवाल के नेतृत्व में अणुव्रत गीत का संगान कर मंगलाचरण किया। इस अवसर पर उपस्थित छात्र-छात्राओं एवं शिक्षकगण को संबोधित करते हुए मुनिश्री स्वस्तिक कुमारजी ने प्राचीन संस्कृत साहित्य का उदाहरण देते हुए कहा कि जिसकी बुद्धि तीव्र एवं प्रज्ञा जागृत होती है उसे 'महाप्रज्ञ' कहते हैं। अभ्यास एवं पुरुषार्थ से हम सभी 'महाप्रज्ञ' बन सकते हैं। उन्होंने बताया कि आचार्य महाप्रज्ञ को प्रदत्त महाप्रज्ञ अलंकरण के उपलक्ष्य में प्रतिवर्ष कार्तिक शुक्ला त्रयोदशी को हम "जीवन विज्ञान दिवस" के रूप में सम्पूर्ण देश में मनाते हैं। उन्होंने आचार्य महाप्रज्ञ को दूसरा विवेकानंद बताते हुए संकल्प शक्ति को विद्यार्थी जीवन का आवश्यक अंग बताया। उन्होंने कहा कि विद्यालय एक मंदिर है शिक्षक उसके पुजारी होते हैं। यदि विद्यार्थी को शिक्षारूपी भगवान को प्राप्त करना है तो शिक्षक अर्थात् गुरु का सम्मान करना होगा। उन्होंने प्रायोगिक अभ्यास के माध्यम से जीवन विज्ञान की महत्ता को प्रकट किया। विद्यालय व्यवस्थापिका डॉ. विजयश्री शर्मा द्वारा ने अतिथियों का स्वागत करते हुए जीवन में अनुशासन के महत्व पर प्रकाश डाला। जैन विश्व भारती के निदेशक राजेन्द्र खटेड़ ने अपने वक्तव्य में जीवन विज्ञान के महत्व को उजागर करते हुए जीवन विज्ञान दिवस के आयोजन के उद्देश्यों को प्रकट किया। कार्यक्रम के मुख्य वक्ता जैन विश्व भारती संस्थान के जीवन विज्ञान एवं योग विभाग के विभागाध्यक्ष डॉ. प्रद्युम्न सिंह शेखावत ने तीक्ष्ण बौद्धिक शक्ति, शारीरिक स्वास्थ्य, मानसिक प्रसन्नता एवं भावात्मक स्थिरता प्राप्त करने में जीवन विज्ञान के छोटे-छोटे प्रयोगों की प्रासंगिता प्रकट करते हुए जीवन विज्ञान को व्यक्तित्व के रूपान्तरण का ज्ञान बताया। उन्होंने जीवन विज्ञान के प्रयोगों को जीवन में उतारने की प्रेरणा देते हुए संयमित जीवनचर्या के महत्व को प्रतिपादित किया। कक्षा दसवीं की छात्रा पायल जैन ने जीवन विज्ञान : स्वस्थ समाज रचना का संकल्प विषय पर प्रस्तुति देते हुए शिक्षा जगत के लिये जीवन विज्ञान को अनिवार्य बताया।प्रशिक्षक रामेश्वर शर्मा एवं महेन्द्र कुमावत ने विद्यार्थियों को जीवन विज्ञान के प्रयोग करवाये। प्राचार्या वनिताधर ने आभार ज्ञापन किया। जीवन विज्ञान अकादमी के सहायक निदेशक हनुमान मल शर्मा ने कार्यक्रम का संचालन करते हुए अपने संयोजकीय वक्तव्य में बताया कि आचार्य तुलसी ने मुनि नथमल को कार्तिक शुक्ला त्रयोदशी वि.सं. 2035 को गंगाशहर में 'महाप्रज्ञ' संबोधन से संबोधित किया था। कार्यक्रम में अभय पैंडसे, मधु जैन, आसमां भाटी, माया वर्मा, विनोद राठौड़ इत्यादि उपस्थित रहे।

प्रेक्षा फाउंडेशन द्वारा आयोजित
जैन विश्व भारती में अष्ट दिवसीय प्रेक्षाध्यान शिविर सम्पन्न

लाडनूं। जैन विश्व भारती के तुलसी अध्यात्म नीडम में प्रेक्षा फाउंडेशन द्वारा दिनांक 1 नवम्बर से 8 नवम्बर 2017 को आयोजित नवकार मंत्र आधारित प्रेक्षाध्यान शिविर सम्पन्न हुआ। शिविर का प्रारम्भ शिविरार्थियों को ध्यान दीक्षा देने से सम्पन्न हुआ। समणी नियोजिका ऋजुप्रज्ञाजी द्वारा इस अवसर पर बताया गया कि सतत ध्यान से एवं ध्यान की गहराई प्राप्त करने के लिए विश्वास एवं एकाग्रता अति आवश्यक है। शिविर की विभिन्न कक्षाओं में गमन योग, प्रेक्षाध्यान, आसन प्राणायाम,मंत्र प्रेक्षा,कायोत्सर्ग इत्यादि प्रयोग करवाये गये। समणी नियोजिका के निर्देशन में आयोजित नवकार मंत्र आधारित प्रेक्षाध्यान शिविर में देश के विभिन्न भागों चैन्नई, इरोड, नई दिल्ली, सुरत आदि स्थानों से प्रतिभागियों ने अति उत्साह के साथ विभिन्न प्रयोग किये। अष्ट दिवसीय शिविर के दौरान प्रेक्षाध्यान की विभिन्न कक्षाओं में समणी नियोजिका ऋजुप्रज्ञाजी, समणी अमलप्रज्ञा, समणी मधुप्रज्ञा, समणी श्रेयसप्रज्ञा, समणी स्वर्णप्रज्ञा एवं प्रशिक्षक मदनलाल दुधोड़िया, गौतम नाहटा एवं ताराचंदराय जैन आदि का विशेष सहयोग प्राप्त हुआ। शिविर संचालन की व्यवस्थाओं में डा. विजयश्री शर्मा, महावीर प्रजापत, श्रेयांस बेगवानी, भैराराम रोहित का विशेष सहयोग रहा।

क्रोध के उपाय - ध्वनि व ध्यान के प्रयोग

हांसी। 'शासनश्री' प्रेक्षाप्राध्यापक मुनिश्री किशनलाल ने धर्मसभा को संबोधित करते हुए कहा कि क्रोध को छोटा भाई अहंकार है। भगवान महावीर के जीवन चरित्र से वृतांत सुनाते हुए बताया कि भगवान ने कितने कष्ट उठाए?उनके पैरों को चुल्हा बनाकर खीर बनाई कानों में कीलें ठोक दी परन्तु फिर भी उन्होंने न तो क्रोध किया न अहंकार। क्रोध करने वाले का आयुष्य छोटा हो जाता है। उसे कोई साथी नहीं मिलता व क्रोधी व्यक्ति की भूख तक मर जाती है। क्रोध को नियंत्रित करने के लिए क्रोध के हारमोन्स को काबु में रखे ऐसा महाप्राण ध्वनिक व 'ऊँ व अर्हम' की ध्वनि के अभ्यास से संभव है। तत्काल गुस्सा शांत करने के लिए जिह्वा को उलटकर तालु से लगा दें। दीर्घ श्वास प्रेक्षा का अभ्यास से दीर्घकालीन प्रभाव हो सकता है। क्रोधी व्यक्ति को लगातार मस्तिष्क में फीड करने रहना चाहिए कि 'मुझे हर परिस्थिति में शांत रहना है' मस्तिष्क के न्यूरोन को स्वतः सूचना से भावित करते रहना चाहिए। क्रोध, मान, मया व लोभ चार प्रकार के कषाय पूर्नजन्म को सींचित करने वाले हैं, इसलिए व्यक्ति जीवन मृत्यु के चक्र में फंसा रहता है। लोभ, लालच व काम वासना के लिए गोनाड़ ग्रन्थि जिम्मेवार है उस ग्रन्थि पर ध्यान कर उसके श्रावों में बदलाव लाया जा सकता है। अतः क्रोध विजय के उपायों का अभ्यास दैनिक चर्या का भाग होना चाहिए। इस अवसर पर अनेकों श्रद्धालुओं के मध्य सभा अध्यक्ष दर्शन कुमार जैन, प्रेक्षा प्रशिक्षक लाजपतराय जैन, पूर्व अध्यक्ष धनराज जैन, डालचन्द जैन, अशोक जैन, महिला मण्डल अध्यक्षा सरोज जैन, शारदा आदि के अलावा सुरत, मुंबई से मुनि निकुंजकुमारजी के नातिजन भी विशेष रूप से उपस्थित रहे।

प्रेक्षाध्यान एवं हास्य थैरेपी कार्यशाला का आयोजन

ईरोड़। मुनि ज्ञानेन्द्रकुमारजी के सान्निध्य में तेरापंथ सभा के तत्वावधान में स्थानीय उत्तर भारतीय परिवारों के लिए प्रेक्षाध्यान एवं हास्य थैरेपी कार्यशाला का आयोजन किया गया। कार्यशाला की गुणवत्ता को ध्यान में रखते हुए केवल 70 लोगों को आमंत्रित किया गया। कार्यशाला मुनिश्री द्वारा मंगल मंत्रोच्चारण के साथ प्रारम्भ हुई। प्रथम सत्र में मुख्य प्रशिक्षक चैन्नई से समागत माणक रांका ने प्रेक्षाध्यान के बारे में जानकारी देते हुए कहा कि आज के भौतिकवादी युग में ध्यान के प्रयोग की अतिआवश्यकता है। ध्यान के माध्यम से हम विशेष शक्ति का जागरण कर सकते हैं। उन्होंने सभी को प्रेक्षाध्यान के प्रयोग करवाए। इसके उपरान्त नित्य उपयोगी यौगिक क्रियाओं व आसन का प्रायोगिक प्रशिक्षण दिया। हास्य थैरेपी में 10 मिनट का अभ्यास प्रशिक्षक मुकेश गिरिया ने करवाया।

मुनि विमलेशकुमारजी ने कहा कि ध्यान एवं कायोत्सर्ग भारत की संस्कृति से जुड़ी हुई पद्धति है, जिसके माध्यम से मनुष्य सिद्ध बुद्ध बन गए, लेकिन आज लोग इसकी महत्ता को नहीं समझ रहे। मुनि ज्ञानेन्द्रकुमारजी ने कहा कि ध्यान से स्थिरता बढ़ती है, मुक्ति होती है। इसके उपरान्त 45 मिनट का कायोत्सर्ग करवाया गया।

इसी सत्र में हास्य थैरेपी प्रशिक्षक ने लोगों को अनेक प्रयोग बताये। उपस्थित लोग विशेष आनन्द महसूस करते दिखाई दिए। तीसरे सत्र में डॉ. मोहनलाल दुगड़ ने शरीर क्या है?शरी की संरचना, श्वास का महत्व बताया। प्रेक्षा प्रशिक्षक माणक रांका ने अनुप्रेक्षा का प्रयोग करवाया। अनुभव रखते हुए कार्यशाला का महत्व सिद्ध किया।

कार्यक्रम को सफल बनाने में सभाध्यक्ष हनुमानमल दुगड़ के नेतृत्व में लालचंद दफ्तरी, ओज बाबेल, ऋषभ नखत, अरविन्द बाबेल, निशा बाबेल, दिलीप चौपड़ा, हेमन्त दुगड़, राजेश जैन, नरेन्द्र नखत, सेल्वाराजन, विनोद दुगड़, कमल बोथरा का विशेष सहयोग रहा। धन्यवाद। ज्ञापन विनोद दुगड़ ने किया। कार्यशाला प्रायोजक रतनलाल नरेन्द्रकुमार नखत, हीरालाल महावीर चौपड़ा, देवेन्द्र चौपड़ा रहे। कार्यक्रम संचालन ऋषभ नखत ने किया।

प्रेक्षा ध्यान शिविर ने बदली लाइफ स्टाइल

पंचदिवसिय आत्मसाक्षात्कार प्रेक्षाध्यान शिविर सम्पन्न

राजसमन्द। भिक्षु बोधि स्थल में तेरापन्थ महिला मण्डल राजसमन्द के तत्वावधान में चल रहे पांच दिवसीय आत्म साक्षात्कार प्रेक्षाध्यान शिविर का समापन हुआ। पांच दिन तक साधकों ने प्रेक्षाध्यान के अंतरयात्रा अनुप्रेक्षा, शरीर प्रेक्षा, लेश्याध्यान, कायोत्सर्ग, मोक्षयात्रा, मृत्यु साक्षात्कार, पूर्व जन्म अनुभूति की दिव्य यात्रा की। कई साधकों ने माना की वे अब तक अनगिनत ध्यान शिविर में भाग ले चुके है मगर इस शिविर में अद्वितीय दिव्य आनंद की अनुभूति हुई। वही कुछ साधकों ने दावा किया की उन्होंने अपने पिछले कई जन्म देखे है। शिविर समापन के अंतिम दिन में उपस्थित शिविरार्थियों को सम्बोधित करते हुए शासनश्री मुनिश्री सुरेशकुमार ने कहा कि ध्यान बाहरी दुनिया के तिलिस्म को तोड़कर बन्धनमुक्त आत्मा से साक्षात्कार करवाने के साथ मोक्ष की राह प्रशस्त करता है।

शिविर निर्देशक मुनिश्री संबोधकुमारजी ने पांच दिन तक ध्यान की विधि, ध्यान कैसे सिद्ध होता है, ध्यान के पांच चरण, विचार मुक्ति सहित अनेक विषयों पर प्रशिक्षण देते हुए कहा कि ध्यान बेध्यानी और बेहोशी को चकनाचूर कर हर कदम होश से जीना सिखाता है।

मुख्य प्रशिक्षक समण सिद्धप्रज्ञ ने पिरामिड ध्यान, योगा व पूर्व जन्म के प्रयोग करवाते हुए कहा कि शिविर के बाद अब जीवन का हर पल शिविर बने। प्रेक्षाध्यान आचार्य महाप्रज्ञ का अनुभूत साधना का दिव्य प्रयोग पद्धति है। जो नियमित ध्यान करते है उनकी जीवन की समस्याएं स्वयं समाहित हो जाती है। शिविर में मण्डल अध्यक्षा सीमा धोका ने स्वागत व आभार शिविर प्रभारी सीमा कावड़िया ने जताया।

प्रेक्षा वाहिनी का हुआ शुभारम्भ

प्रेक्षा फाउंडेशन व प्रेक्षा इंटरनेशनल द्वारा देश भर में 100 से अधिक संचालित प्रेक्षा वाहिनी से प्रेरित होकर शासनश्री मुनिश्री सुरेशकुमारजी के निर्देशन में शिविर के अंतिम दिन राजसमन्द में प्रेक्षा वाहिनी की घोषणा हुई। प्रेक्षा वाहिनी के 15 सदस्यों ने वाहिनी की सदस्यता लेते हुए इसके नियमों को आत्म साक्षी से पालन करने की समण सिद्धप्रज्ञ से शपथ ली। गौरतलब है वाहिनी प्रत्येक माह के एक रविवार को प्रेक्षाध्यान कार्यशाला आयोजित करेगी।

चिंतन है जीव विज्ञान साध्वीश्री अणिमाश्रीजी

कांदिवली। साध्वीश्री अणिमाश्रीजी के सान्निध्य में जीवन विज्ञान दिवस के उपलक्ष में जीवन विज्ञान सेमिनार व संघ प्रभावक कार्यक्रम कांदिवली तेरापंथ भवन में किया गया। लगभग ढाई-तीन हजार विद्यार्थियों से पूरा भवन भर गया। जीवन विज्ञान एकेडमी के तत्वावधान में आयोजित इस सेमिनार में चेन्नै से समागत राकेश खटेड़ ने प्रशिक्षण दिया। साध्वीश्री अणिमाश्रीजी ने विद्यार्थियों को सम्बोधित करते हुए कहा कि आचार्यश्री महाप्रज्ञ के चिन्तनशील मस्तिष्क की उपज है जीवन विज्ञान। उनके अभिनव को उपजा क्रान्तिकारी चिन्तन है-जीवन विज्ञान। महान् शिक्षाविद् आचार्य महाप्रज्ञ का शिक्षा जगत को महत्वपूर्ण तोहफा है जीवन विज्ञान। शिक्षा के दो प्रमुख घटक है ग्रहण व अभ्यास। आज ज्ञानात्मक शिक्षा का ही प्रचार-प्रसार हो रहा है। अभ्यास पक्ष छूट गया है यही वजह है कि आज विद्यार्थियों में विनम्रता, सहिष्णुता, सम्मान, अनुशासन आदि का विकास नहीं हो रहा है। साध्वीश्री ने कहा कि जीवन विज्ञान एकेडमी के अध्यक्ष सुरेन्द्र कोठारी, मंत्री प्रीतम हिरण, भारती आच्छा, उमा कावड़िया व पूरी टीम ने सराहनीय व सार्थक श्रम किया है। मुख्य प्रशिक्षक राकेश खटेड़ ने प्रभावशाली प्रशिक्षण देते हुए कहा प्रत्येक व्यक्ति हर क्षेत्र में विकास करना चाहता है। वह अपने व्यक्तित्व को प्रभावी आकर्षक और तेजस्वी बनाना चाहता है। व्यक्तित्व के निर्माण के मुख्य घटक है शारीरिक विकास, बौद्धिक विकास, मानसिक विकास व भावनात्मक विकास। आज की शिक्षा पद्धति से शारीरिक विकास नहीं हो रहा है। जब तक भावनात्मक व मानसिक विकास नहीं होगा व्यक्ति अपने आवेश व आवेग पर नियंत्रण नहीं कर पाता। मनीष पोरवाल ने राइट ब्रेन को जाग्रत कर इन्द्रिय चेतना को पावरफुल बनाने की बात कही। वैष्णवी पोरवाल ने आंख पर पट्टी बांधकर चमत्कार दिखाए और बताया कि व्यक्ति आंख के अतिरिक्त अन्य इन्द्रियों से भी देख सकता है।

प्रेक्षाध्यान

शिविरार्थियों के अनुभव

शिविर के समापन सत्र में शिविरार्थियों ने शिविरकाल के अपने अपने अनुभव साझा किए। तथ्यात्मक विचारों का आयान प्रदान हुआ। उनमें से कुछ विचार इस प्रकार है :

- इस शिविर में मुझे स्वयं का बहुमुखी विकास करने का अवसर प्राप्त हुआ। शारीरिक, भावनात्मक एवं मानसिक तीनों ही दृष्टि से स्वयं को समझने का अवसर प्राप्त हुआ। मैंने यहां अपेक्षा से अधिक प्राप्त किया। मुझे यहां आकर यहां महसूस हुआ कि मैं यहां पहले क्यों नहीं आ सका।
  – सुरेन्द्र भंडारी, इरोड
- मुझे यहां आकर बहुत अच्छा लगा। कायोत्सर्ग की कक्षा, अर्हम ध्वनि प्रयोग एवं महाप्राण ध्वनि प्रयोग में मुझे बहुत आनंद महसूस हुआ। प्रशिक्षकगण एवं समणीवृन्द की कक्षाएं अत्यन्त ही साधना से पूर्ण थी।
  – अशोक कुमार बोथरा, चेन्नई
- ये मेरे कुछ शुभकर्मों का फल है कि मैं इस शिविर में प्रतिभागी बनी। यदि मैं इस शिविर में नहीं आती तो मैं इस असीम ज्ञान प्राप्ति से वंचित रह जाती। स्वास्थ्य की-प्रतिकूलता होते हुए भी मैंने यहां बहुत अच्छा महसूस किया। समणीवृन्द प्रशिक्षकगण की समझाने की शैली अत्यन्त अच्छी लगी।
  – अनीता गोठी, चेन्नई
- ये आठ दिन का समय किस प्रकार व्यतीत हुआ, पता ही नहीं चला। समयबद्ध कक्षाएं, उत्तम आवास व्यवस्था, सात्विक भोजन सारी व्यवस्थाएं अत्यन्त ही सुरुचिपूर्ण रही। मैं स्वयं में बहुत सारे परिवर्तन लिए जा रही हूं और मेरी यह भावना है कि मैं ऐसे और भी शिविर में प्रतिभागी बनूं।
  – डिम्पल नाहटा, नई दिल्ली
- मुझे यहां आकर ध्यान की गहराई में जाने का अवसर प्राप्त हुआ। समणीवृन्द द्वारा अत्यन्त ही सरल एवं सहज रुप से ध्यान की गहराई को समझाया। मेरी यह भावना है कि मैं अपने क्षेत्र के लोगों को प्रेरित करु कि वो प्रेक्षाध्यान शिविर में प्रतिभागी बने।
  – सुनीता भंडारी, इरोड
- प्रारम्भ में तो शिविर में मेरा मन नहीं लगा था परन्तु बाद में धीरे-धीरे अभ्यास से मुझे समझ आने लगा। समस्त समणीवृन्द की कक्षाओं ने मुझे अत्यन्त प्रभावित किया। प्रशिक्षकगण द्वारा यौगिक क्रियाओं एव आसन प्राणायम के बारे में जो जानकारी प्रदान की गयी, वो अत्यन्त रुचिकर लगी।
  – ए.सरोज बोहरा, चेन्नई

आत्मा व शरीर अलग

जीव भिन्न और शरीर भिन्न है। आस्तिकवाद में आत्मा और शरीर को अलग-अलग माना जाता है। आदमी का मूल स्थान उसकी स्वयं की आत्मा होनी चाहिए। आदमी ईंट-पत्थर द्वारा जोड़े घर को भी अपना घर मानता है, वह भी सापेक्ष बात है, किन्तु उस घर में टूट-फूट हो सकता है, कोई लूट सकता है, छूट सकता है, किन्तु आत्मा रुपी घर स्थाई होता है। आत्मा के सिवाय सबकुछ अन्य है। इसलिए आदमी को अपनी आत्मा का ध्यान रखने का प्रयास करना चाहिए। आदमी अपनी आत्मा को अलग और शरीर को अलग रखने का प्रयास करना चाहिए। अन्यता की अनुप्रेक्षा कर आदमी अपनी आत्मा के निकट रहने का प्रयास कर सकता है। आदमी का शरीर से जितना मोह कम होगा, आत्म रुपी सूर्य का प्रभाव बढ़ सकता है।

ज्ञान का सार तत्व अहिंसा

दुनिया में विभिन्न विषयों और रूपों में ज्ञानी लोग पुरुष मिलते है, किन्तु ज्ञान का सार तत्व अहिंसा है। हिंसा को जानकर अहिंसात्मक जीवनशैली हो जाए, तो ज्ञानी होने का बड़ा सार निकल जाता है। हिंसा आदमी को दुखी बनाने वाली और अहिंसा लोगों को सुखी बनाने वाली होती है। व्यवहार आदमी को स्वयं के लिए उचित ना लगे, वैसा व्यवहार उसे खुद भी दूसरों के लिए उपयोग नहीं करना चाहिए। बच्चे देश का भविष्य होते है और बच्चों में अच्छे संस्कार आ जाएं। बच्चे महान, विद्वान या किसी अवस्था तक भगवान बनने का प्रयास करें।

– आचार्य महाश्रमण

प्रेक्षाध्यान शिविर में भाग लेने वाले शिविरार्थियों से अनुरोध है कि आप अपने अनुभव हमें प्रकाशन हेतु भेजें। -सम्पादक

प्रेक्षावाहिनी

एक परिचय

प्रेक्षाध्यान के द्वारा आध्यात्मिक एवं आनंदमय जीवन जीने में रुचि रखने वाले व्यक्तियों के समूह का नाम है– 'प्रेक्षावाहिनी'। इसमें सम्मिलित सभी व्यक्ति प्रेक्षाध्यान के साधक होते हैं। प्रेक्षाध्यान में रुचि रखने वाले साधकों में परस्पर संपर्क एवं संवाद बना रहे, इस दृष्टि से देश के विभिन्न क्षेत्रों में प्रेक्षावाहिनियां गठित की जा रही हैं। कम से कम दस साधक मिलकर किसी स्थान पर प्रेक्षावाहिनी गठित कर सकते हैं। गठित प्रेक्षावाहिनी द्वारा प्रत्येक माह के प्रथम रविवार को प्रेक्षाध्यान की एक घंटे की ध्यान-गोष्ठी आयोजित की जाती है, जिसमें सामूहिक रूप से प्रेक्षाध्यान का अभ्यास व प्रयोग किये जाते हैं।

लक्ष्य

प्रेक्षाप्रणेता आचार्य महाप्रज्ञ द्वारा प्रणीत प्रेक्षाध्यान को आचार्य महाश्रमण के निर्देशन में जन–जन तक प्रसारित कर शांति व अध्यात्म का वातावरण निर्मित करने का प्रयास करना।

उद्देश्य

1. व्यक्ति का आध्यात्मिक विकास करना।
2. प्रेक्षाध्यान का संगठन सुदृढ़ करना।
3. ऐसे प्रशिक्षित एवं समर्पित मंच का निर्माण करना जो प्रेक्षाध्यान के प्रसार में उपयोगी बन सके।

निर्देशक मण्डल

प्रेक्षा फाउण्डेशन द्वारा मनोनीत निर्देशक मण्डल द्वारा प्रेक्षावाहिनी का संचालन किया जाएगा। निर्देशक मण्डल का दायित्व होगा कि :

1. प्रतिवर्ष जनवरी माह में प्रत्येक शाखा के लिए एक संवाहक का चयन करना।
2. प्रत्येक शाखा को केन्द्रीय निर्देश और प्रेक्षा फाउण्डेशन के संवादों से अवगत कराना।
3. प्रत्येक शाखा को प्रेक्षावाहिनी के सम्यक् संचालन के लिए प्रेरित करना तथा कार्य की अवगति लेना।

संवाहक

दायित्व

1. अपने क्षेत्र में प्रेक्षावाहिनी का सम्यक् संचालन करना।
2. अपने क्षेत्र में प्रेक्षाध्यान की कार्यशाला, शिविर आदि का आयोजन करना।
3. प्रतिमाह प्रेक्षाध्यान की ध्यान गोष्ठी का आयोजन करना।
4. प्रेक्षावाहिनी के सदस्यों की अभिवृद्धि के लिए प्रयत्नशील रहना।
5. प्रत्येक दस सदस्यों के समूह में एक सह-संवाहक का चयन करना।
6. प्रत्येक सह-संवाहक तक संवाद प्रेषित करना।
7. प्रत्येक सह-संवाहक को प्रेक्षावाहिनी के कार्य के लिए प्रेरित करना तथा अवगति लेना।
8. निर्देशक मण्डल द्वारा प्रदत्त कार्यों को क्रियान्वित करना।

सह-संवाहक

दायित्व

1. प्रेक्षावाहिनी के संचालन में संवाहक का सहयोग करना।
2. प्रेक्षावाहिनी के सदस्यों की अभिवृद्धि में प्रयत्नशील रहना।
3. अपने समूह के सदस्यों तक संवाद प्रेषित करना।
4. प्रेक्षाध्यान की ध्यान गोष्ठी में अपने समूह के सदस्यों की उपस्थिति सुनिश्चित करना।
5. संवाहक द्वारा प्रदत्त कार्यों को क्रियान्वित करना।

सदस्य

अर्हता

1. जो प्रेक्षाध्यान में रुचि रखता है।
2. जो आध्यात्मिक बनना चाहता है।
3. जो सोलह वर्ष से अधिक अवस्था का है।

सदस्यता

1. प्रेक्षावाहिनी के किसी सदस्य द्वारा अनुमोदित व्यक्ति ही प्रेक्षावाहिनी का सदस्य बन सकेगा।
2. सदस्यता सहयोग राशि रु. 100/- प्रति व्यक्ति रहेगी, जिसकी प्राप्ति के बाद प्रेक्षा फाउण्डेशन द्वारा किट प्रेषित की जाएगी।
3. प्रत्येक सदस्य का निश्चित सदस्यता क्रमांक रहेगा।

दायित्व

1. प्रतिमाह प्रेक्षाध्यान की ध्यान-गोष्ठी तथा प्रेक्षावाहिनी के कार्यक्रमों में उपस्थित रहना।
2. प्रेक्षाध्यान के प्रसार के लिए प्रयासरत रहना।
3. प्रेक्षावाहिनी की सदस्यता की अभिवृद्धि के लिए प्रयत्नशील रहना।
4. यथासंभव प्रतिदिन कुछ समय प्रेक्षाध्यान का अभ्यास करना।
5. अपेक्षानुसार संवाहक / सह-संवाहक का सहयोग करना।

ध्यानगोष्ठी

सामान्यतः प्रत्येक माह के प्रथम रविवार को 1 घंटा प्रेक्षावाहिनी ध्यान गोष्ठी आयोजित होगी। ध्यान गोष्ठी का क्रम निम्न प्रकार रहेगा–

1. प्रेक्षा गीत	2. मंगल भावना	3. प्रेक्षा प्रवचन
4. प्रेक्षाध्यान	5 सूचना	6. सामूहिक उपस्थिति

- प्रेक्षावाहिनी का बैनर सभी कार्यक्रमों में अनिवार्य रूप से लगेगा।
- प्रेक्षावाहिनी की वेशभूषा सामान्यतः सफेद पोशाक रहेगी एवं सभी सदस्य निर्धारित बैज लगाकर ही उपस्थित होंगे।

अंक प्रणाली

सभी सदस्यों के मूल्यांकन के लिए एक अंक प्रणाली रहेगी। वर्ष में सर्वाधिक अंक प्राप्तकर्ता को सम्मानित किया जाएगा।

अंक निर्धारण

ध्यान गोष्ठी में उपस्थिति 100 अंक,
ध्यान गोष्ठी में अनुपस्थिति (–)100 अंक
नये सदस्य को जोड़ने पर 100 बोनस अंक

अपने क्षेत्र में प्रेक्षावाहिनी प्रारम्भ करने के लिए सम्पर्क करें : 09414134340, 08527094064

सम्पर्क सूत्र : **प्रेक्षा फाउण्डेशन**

जैन विश्व भारती, लाडनूं–341306 (राजस्थान) 01581–226119, 082333 44482 foundation@preksha.com / www.preksha.com

Date of Publication : 05.12.2017

Date of Posting : 05/07-12-2017

डाक पंजीयन संख्या: नागौर/ 016/15—17

भारत सरकार पंजीयन संख्या : 35209/80

If undelivered please return to : Jain Vishva Bharati, Ladnun - 341306, Dist. Nagaur (Raj.) Ph. : 01581-226080

Shed the 'I', Renounce the 'Mine', Everything will be your, Forever.

-Acharya Mahapragya

With best compliments from :

Ratanlal Basant Kumar Parakh (Churu) Kolkata

ORBIT GROUP

The Orbit, 1 Garstin Place, Kolkata-700 001 Ph: 4011 9050 (20 lines)

Fax: 2210 1250 email: info@orbitgroup.net | www.orbitgroup.net

Orbit Residences. The key to high living.

प्रकाशक-मुद्रक : श्री राजेश कोठारी द्वारा तुलसी अध्यात्म नीडम्, जैन विश्व भारती, लाडनूं के लिए प्रकाशित तथा यापन आई. एस. सी. कॉर्पोरेशन, नई दिल्ली में मुद्रित।

संपादक - जैन सुराकरण छाजेड़